हिन्दी साहित्य धारा

कक्षा – एकादश

नवीन पाठ्य–क्रम

हिन्दी 'ब' (द्वितीय भाषा)

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्

हिन्दी साहित्य धारा

कक्षा–एकादश

नवीन पाठ्य–क्रम

हिन्दी 'ब' (द्वितीय भाषा)

पश्चिम बंग सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान
एकादश श्रेणी के छात्र–छात्राओं को बिना मूल्य वितरण के लिए।
विक्रय के लिए नहीं।

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्

West Bengal Council of Higher Secondary Education

First Edition : May, 2024
Second Edition : April, 2025

Publisher : Dr. Priyadarshini Mallick
Secretary
West Bengal Council of Higher Secondary Education
Vidyasagar Bhawan, 9/2, Block - D-J
Sector-II, Saltlake, Kolkata-700091

Copyright reserved by West Bengal Council of Higher Secondary Education. No part of this book may be reproduced / reprinted / script used / font translated without the written permission of honourable Secretary, Dr. Priyadarshini Mallick.

Printed at

West Bengal Text Book Corporation Limited
(Government of West Bengal Enterprise)

सत्यमेव जयते

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और

राष्ट्र की एकता और अखंडता

सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई0 (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

भारतवर्ष के नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं मौलिक कर्त्तव्य

मौलिक अधिकार (भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14-35)

1. समता (या समानता) का अधिकार :

● देश का कानून सभी नागरिकों को एक समान मानेगा और समान रूप से प्रत्येक की रक्षा करेगा।

● जाति, लिंग, धर्म तथा मूल वंश के आधार पर सार्वजनिक स्थानों पर राज्य कोई भेद-भाव नहीं करेगा।

● सार्वजनिक नियोजन में प्रत्येक नागरिक के लिए अवसर की समानता होगी।

● अस्पृश्यता का उन्मूलन और वर्जन घोषित किया गया है।

● सेना या विधा संबंधी सम्मान के... सिवाय अन्य कोई भी उपाधि राज्य द्वारा प्रदान नहीं की जाएगी।

2. स्वतंत्रता का अधिकार

● बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

● शांतिपूर्वक हथियारों के बिना एकत्रित होने और सभा करने की स्वतंत्रता।

● संघ / यूनियन / सहकारी समिति बनाने की स्वतंत्रता।

● भारतवर्ष के किसी भी हिस्से / क्षेत्र में आवागमन की स्वतंत्रता।

● देश के किसी भी भाग में निवास करने और बसने की स्वतंत्रता।

● कोई भी व्यापार अथवा पेशा अथवा वृत्ति अपनाने या करने की स्वतंत्रता।

● अपराध करने के समय लागू कानून के तहत ही अपराधी को सजा दी जाएगी।

● किसी व्यक्ति को एक अपराध के लिए एक से अधिक बार दंडित नहीं किया जा सकता।

● प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार।

● किसी भी व्यक्ति को बिना ठोस / यथार्थ कारण के हिरासत में नहीं लिया जा सकता और हिरासत में लिए गए व्यक्ति को अपना बचाव करने का अवसर प्रदान करना होगा।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार :

● वेतन बिना श्रम या किसी व्यक्ति को खरीदने और विक्रय करने पर वर्जन।

● 14 वर्ष से कम वय वाले किसी बच्चे को कारखानों खदानों या अन्य किसी जोखिम भरे कामों पर नियुक्त करना वर्जित है।

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार :

● अंत:करण या विवेक की स्वतंत्रता, किसी धर्म को मानने, आचरण करने एवं प्रचार प्रसार करने के लिए सभी नागरिक स्वतंत्र हैं।

● अपने धर्म के लिए संस्थाओं की स्थापना करने एवं देखभाल करने तथा विधि के अनुसार सम्पत्ति के अर्जन, स्वामित्व और प्रशासन का अधिकार है।

● किसी विशेष धर्म / धार्मिक संप्रदाय की उन्नति या पोषण के लिए सीधे प्रयोग में आने वाली आय पर कर नहीं लगाया जा सकता।

● राज्य द्वारा पोषित शिक्षण-संस्थानों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती और ऐसे संस्थानों में विद्यर्थियों को किसी धार्मिक अनुष्ठान में उनकी इच्छा के विरुद्ध धर्मोपदेश सुनने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

5. संस्कृति और शिक्षा संबंधित अधिकार :

● हमारे देश के सभी नागरिकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को बचाने, सुरक्षित रखने और प्रचारित करने का अधिकार है।

राज्य अपने द्वारा पोषित अथवा संचालित शिक्षण संस्थानों में वर्ण, धर्म, जाति अथवा भाषा के आधार पर किसी व्यक्ति के प्रवेश को मना नहीं कर सकता।

सभी धार्मिक और भाषिक अल्पसंख्यकों का अपने पसंद की शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना करने और चलाने का अधिकार है।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार :

कोई व्यक्ति अपने मौलिक अधिकार की रक्षा करने के लिए देश के सर्वोच्च न्यायालय और उच्च-न्यायालय के शरणापन्न हो सकता है।

मूल कर्तव्य
(भारतीय संविधान का 51क अनुच्छेद)

मूल कर्तव्य-भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह-

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे :

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखें और उनका पालन करें :

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे :

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वन किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे :

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रिओं के सम्मान के विरुद्ध है :

(च) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे :

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे :

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे :

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे :

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई उंचाईयों को छू ले :

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष की आयु वाले अपने, यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

PREFACE

West Bengal Council of Higher Secondary Education (WBCHSE) has taken initiative to revise the curriculum/syllabus of all the subjects with the introduction of Semester System with 2024-2025 academic year. In this direction WBCHSE has formed individual subject committees by inducting faculty members from various schools/colleges/universities.

The WBCHSE has developed ***Hindi Sahitya Dhara*** as **Hindi (2nd Language)** textbook for Classes XI to be studied in all Government, Government Sponsored, Government Aided and Government Affilliated Schools of West Bengal.

The delight of meeting great minds, the discovery of new worlds, the excitement of facing different real-life situations and characters and the sensitising of the mind while the soul comes to us through the experience of reading and responding to good literature. That is what the selections in ***Hindi Sahitya Dhara*** aim to do.

In ***Hindi Sahitya Dhara*** learners are exposed to a wide range of literary Hindi texts.

The texts are an interesting mix of classic and contemporary selections of prose and poetry. There is an assortment of Indian and global texts in a variety of genres so that students can enjoy the richness of literature in its various forms. A play has also been included in the syllabus for class XI, where serious thought has gone into ensuring that the choice of texts are sensitive, relevant and thought provoking so that students become more insightful and responsive in their reading of literature.

The Government has decided to distribute this book free of cost. We are grateful to Prof. Bratya Basu, the Minister-In-Charge, Department of School and Higher Education, Government of West Bengal, for his initiative.

Suggestions, views and comments to improve the book are welcome.

May, 2024
Vidyasagar Bhavan

Chiranjib Bhattacharjee
President
West Bengal Council of
Higher Secondary Education

Class XI
Semester - 1
HINDI B

Full Marks : 40
Sub Topic :

Units	Contents	Marks	Contact Hours
Unit - 1 साहित्य क काव्य	1. सूरदास–पद 2. रहीम–दोहे 3. मैथिली शरण गुप्त— कैकेयी का अनुताप 4. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'— स्नेह निर्झर बह गया	1 × 10 = 10	24
Unit - 1 साहित्य ख गद्य	1. दिनकर–अर्धनारीश्वर 2. प्रेमचंद–पुत्र प्रेम 3. बनफूल – दूध का दाम	1 × 10 = 10	21
Unit - 2 नाटक (पूरक पाठ)	शंकर शेष–एक और द्रोणाचार्य (पूर्वार्द्ध) अथवा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना— बकरी (प्रथम अंक)	1 × 5 = 5	20
Unit - 3 अपठित बोध	काव्य अथवा गद्य	1 × 5 = 5	10
Unit - 4 व्याकरण	1. उपसर्ग 2. प्रत्यय 3. कारक 4. मुहावरे 5. अशुद्धि संशोधन	1 × 5 = 5	20
Unit - 5 पारिभाषिक शब्द	कुल – 50	1 × 5 = 5	5
Page Total		**40**	**100**

Class XI
Semester - II
HINDI B

Full Marks : 40

Sub Topic :

Units	**Contents**	**Marks**	**Contact Hours**
Unit - 1 साहित्य क काव्य	1. अज्ञेय — बावरा अहेरी 2. बच्चन — निशा निमंत्रण 3. मुक्तिबोध — मैं उनका ही होता 4. नागार्जुन — प्रेत का बयान	$2 \times 2 = 4$ $3 \times 1 = 3$ $5 \times 1 = 5$ 12	24
Unit - 1 साहित्य ख गद्य	1. हजारी प्रसाद द्विवेदी — शिरीष के फूल 2. भीष्म साहनी — झुटपुटा 3. फणीश्वर नाथ रेणु — पहलवान की ढोलक	$2 \times 2 = 4$ $3 \times 1 = 3$ $5 \times 1 = 5$ 12	21
Unit - 2 नाटक (पूरक पाठ)	शंकर शेष–एक और द्रोणाचार्य (उत्तरार्द्ध) अथवा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना– बकरी (द्वितीय अंक)	$3 \times 2 = 6$ $5 \times 1 = 5$ 11	20
Unit - 3 रचना	1. पत्र लेखन 2. अनुच्छेद लेखन 3. भाव विस्तार	$5 \times 1 = 5$	15
Page Total		**40**	**80**

PROJECT

CLASS-XI (SEMESTER II)

FULL MARKS : 20

(PROJECT REPORT – MAXIMUM IN PAGES 20 TO 25)

विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार निम्नांकित विषयों में से कोई एक परियोजना द्वितीय सेमेस्टर में प्रस्तुत करें :

(क) किसी कहानी/लोक कथा/प्रसंग का नाट्य रूपांतरण अथवा रेडियो नाट्य रूपांतरण की हस्तलिखित प्रस्तुति।

(ख) किसी एक तात्कालिक समस्या जैसे :

(अ) जनसंख्या विस्फोट : देश की विकराल समस्या।

(ब) भूमंडलीय ऊष्मीकरण (ग्लोबल वार्मिंग)।

(स) महासागरों का बढ़ता जलस्तर : खतरों की दस्तक का विस्तृत विवरण (कारण-निवारण सहित) पर विस्तृत लेखन।

(ग) हिंदी की उपभाषाएँ एवं उसकी बोलियाँ (विस्तृत लेखन)।

(घ) डायरी और हम—डायरी लिखने की शैली, उद्देश्य, किसी विज्ञ व्यक्ति की डायरी के कुछ अंश और अपनी दस दिन की दिनचर्या को डायरी शैली में प्रस्तुत करना।

(ङ) मेरे प्रिय साहित्यकार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (विस्तृत लेखन)।

साभार

नीरू शुक्ला

सुशीला साव

संजय साह

आवरण

सुब्रत माझी

विषय – सूची

कक्षा–एकादश

प्रथम सेमेस्टर

1. साहित्य 'क' काव्य

(i)	सूरदास के पद	सूरदास	1-5
(ii)	रहीम के दोहे	रहीमदास	6-7
(iii)	कैकेयी का अनुताप	मैथिलीशरण गुप्त	8-10
(iv)	स्नेह निर्झर बह गया	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	11-12

2. साहित्य 'ख' गद्य

(i)	अर्धनारीश्वर	रामधारी सिंह 'दिनकर'	13-20
(ii)	पुत्रप्रेम	मुंशी प्रेमचन्द	21-26
(iii)	दूध का दाम	वनफूल	27-33

3. पारिभाषिक शब्द 34-36

द्वितीय सेमेस्टर

1. साहित्य 'क' गद्य

(i)	बावरा अहेरी	सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	37-41
(i)	निशा निमन्त्रण	हरिवंश राय 'बच्चन'	42-43
(i)	मैं उनका ही होता	गजानन माधव 'मुक्तिबोध'	44-45
(i)	प्रेत का बयान	नागार्जुन	46-48

2. साहित्य 'ख' गद्य

(i)	शिरीष के फूल	हजारी प्रसाद द्विवेदी	49-54
(i)	झुटपुटा	भीष्म साहनी	55-65
(i)	पहलवान की ढोलक	फणीश्वर नाथ 'रेणु'	64-72

HIN B

कक्षा एकादश में अध्येतव्य पूरक पुस्तकों के नाम–

(1) एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष

अथवा

(2) बकरी – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

[Note : पूरक पाठ में निर्धारित पुस्तक को विद्यार्थी बाजार से क्रय करें।**]**

SEMESTER - I

साहित्य 'क'
काव्य

सूरदास के पद

सूरदास

कवि परिचय :

सूरदास का जन्म सन् 1478 ई. संवत-विक्रम 1535 में आगरा से मथुरा जाने वाले मार्ग पर स्थित रुनकता नामक ग्राम में हुआ था। कुछ विद्वान दिल्ली के निकट स्थित 'सीही' नामक ग्राम को इनका जन्म स्थान मानते है। इनके पिता का नाम पं. रामदास सारस्वत था। इनकी माता का नाम जमुनादास था। उनका परिवार निर्धनता के साथ अपना गुजारा कर रहा था। वह अपने माता-पिता की चौथी संतान थे बहुत से लोग यह मानते हैं कि वह जन्म से ही अंधे थे। सूरदास जी श्री कृष्ण के परम भक्त थे। वह हर पल भगवान की भक्ति में ही डूबे रहते थे। भगवान को पाने की इच्छा की लालसा के चलते ही एक दिन उन्होंने वृन्दावन धाम जाने की सोची। आखिरकार वह वहां के लिए रवाना हो ही गए। सूरदास जी को वहां पर बल्लभाचार्य जी मिले। एक दिन, महाप्रभु बल्लभाचार्य भी गऊघाट आए। उन्होंने सूरदास को गाते हुए सुना। बल्लभाचार्य को सूरदास के पदों में इतना आनंद आया कि उन्होंने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। बल्लभाचार्य के संरक्षण में सूरदास की भक्ति और कला का विकास हुआ।

सूरदास ने अपनी रचनाओं में कृष्ण की बाल लीलाओं का अत्यंत सुंदर और महत्वपूर्ण चित्रण किया है। उनके पदों में कृष्ण की बालसुलभ छवि, उनकी मधुर क्रीड़ाएँ, और उनके प्रेममय व्यवहार का चित्रण किया गया है। सूरदास जी ने महाप्रभु बल्लभाचार्य से गुरु दीक्षा ली। दीक्षा के बाद, बल्लभाचार्य जी ने सूरदास जी को गोवर्धन के श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन का भार सौंप दिया। सूरदास जी बहुत खुश हुए। उन्होंने गुरु जी के आशीर्वाद से श्रीनाथजी की भक्ति में लीन हो गए। उनके कीर्तन से सभी भक्तों के मन आनंदित हो जाते थे। सूरदास जी ने श्रीनाथजी की भक्ति में कई सुंदर पद और भजन लिखे। सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं—

सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य-लहरी-जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं, नल-दमयन्ती, व्याहलो

सूरदास जी की मुख्य भाषा ब्रज है इसके साथ कहीं-कहीं इन्होंने अरबी फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। लोकोक्तियों, मुहावरों, रस, छंद एवं अलंकारों का सहज प्रयोग किया है। इनके संपूर्ण पदों में गेयता है। समग्रता सूरदास जी के काव्य का भाव पक्ष एवं कला पक्ष बेजोड़ है। महान भक्त सूरदास जी का निधन 1583 ईस्वी में हो गया था। निधन के समय वह गोवर्धन के निकट पारसौली गाँव में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने श्री कृष्ण के चरणों में ही अपने आप को समर्पित कर दिया था।

सूरदास के पद

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै, दुलराइ, मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै, कै रही, करि करि सैन बतावै।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नित जसुमति पावै।।

सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कै पानि गहावति डगमगाइ धरनी धरै पैया।
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति उर आनंद, भरि लेति बलैया।
कबहुँक कुल-देवता मनावति चिर जीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला अति प्रताप बिलसत नँदरैया।।

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि बासर मोहि बहुत सतायो अब हरि हाथहि आए।
माखन-दधि मेरौ सब खायौ बहुत अचगरी कीन्हीं।
अब तौ घात परे हौ ललना तुम्हें भलैं मैं चीन्हीं।
दोउ भुज पकरि कह्यौ कहँ जैहो माखन लैउँ मँगाइ।
तेरी सौं मैं नैंकुन खायौ सखा गए सब खाइ।
मुख तन चितै बिहँसि हरि दीन्हौं रिस तब गई बुझाइ।
लयौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी सूरदास बलि जाइ।।

निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस–रितु हमपै जब तैं स्याम सिधारे।
दृग अंजन न रहत निसि–बासर कर कपोल भए कारे।
कंचुकि–पट सूखत नहिं कबहुँ उर बिच बहत पनारे।
ऐसै सिथिल सबै भइ काया पल न जात रिस टारे।
सूरदास प्रभु यही परेखौ गोकुल काहैं बिसारे।।

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियौ तनक चितवनि मैं चपल नयन की कोर।
पकरे हुते आनि उर अंतर प्रेम प्रीति कै जोर।
गए छड़ाइ तोरि सब बंधन दै गए हँसनि अकोर।
चौकि परी जागत निसि बीती तारनि गिनते भोर।
सूरदास प्रभु सरबस लूट्यौ नागर नवल किसोर।।

रहीमदास के दोहे

रहीम

कवि परिचय :

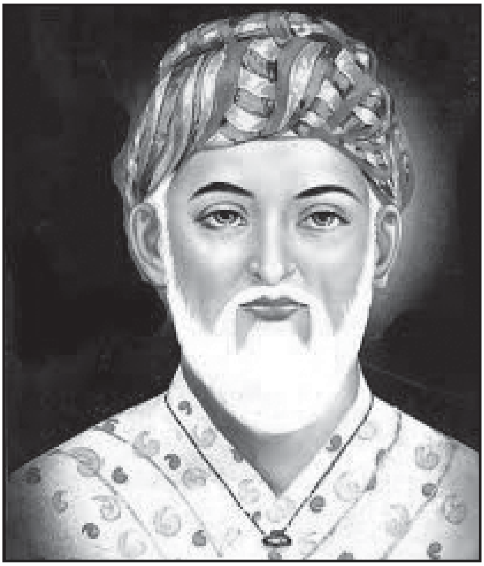

रहीम जी का जन्म 17 दिसम्बर 1556 को कवि में हुआ था। उनके पिता का नाम बैरम खान था। मुल्ला मुहम्मद अमीन ने रहीम दास जी को शिक्षा दी उन्होंने रहीम जी को तुर्की, अरबी तथा फारसी भाषा का ज्ञान दिया तथा उन्हें छंद रचना और फारसी व्याकरण का भी ज्ञान दिया है। जिसके चलते रहीम दास जी ने अनेक रचनाएँ की और उनके दोहे और रचनाएँ आज भी पढ़े जाते है। हिन्दी साहित्य में रहीम दास जी का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। रहीम जी ने अपने जीवनकाल में हिन्दी, फारसी, संस्कृत, अरबी जैसी कई भाषाओं का अध्ययन किया। रहीम जी अकबर के दरबार में कई पदों पर नियुक्त थे तथा वो अकबर के दरबार के नवरत्नों में भी शामिल थे। रहीम जी के संग्रह का वर्णन कुछ इस प्रकार है- बरवै नायिका-भेद, रास पंचाध्यायी, रहिमन विनोद, रहिमन शतक (लाला भगवानदीन), श्रृंगार सतसई। रहीम को कई सारी भाषाओं का ज्ञान था जिसके चलते उन्होंने 'वाकयात बाबरी' नाम के एक तुर्की भाषा के लिखे ग्रंथ को फारसी भाषा में अनुवाद किया है तथा इसके अलावा उन्होंने फारसी भाषा में बहुत सारी कविताओं की रचना भी की है रहीम जी ने 'खेट कौतूक जातकम्' नाम के एक ज्योतिष ग्रन्थ की भी रचना की है, इस ग्रन्थ में इन्होंने संस्कृत शब्दों के साथ-साथ फारसी शब्दों का भी अनूठा मेल बैठाया है।1 अक्टूबर 1627 को 70 साल की उम्र में रहीम दास जी की मृत्यु हो गई।

रहीम दास के दोहे

तासों ही कछु पाइए, कीजे जाकी आस।
रीते सरवर पर गए, कैसे बुझे पियास।। १ ।।

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान।। २ ।।

रहिमन वे नर मर गये, जे कछु मांगन जाहि।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि।। ३ ।।

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत वसि कहा भौरे को भाय।। ४ ।।

ओछे को सतसंग रहिमन तजहु अंगार ज्यों।
तातो जारै अंग सीरै पै कारौ लगै।। ५ ।।

दोनों रहिमन एक से, जो लो बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक, रितु बसंत के माहिं।। ६ ।।

समय पाय फल होत है, समय पाय झरी जात।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछितात।। ७ ।।

रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पै डारि के, सबै पियावै तोय।। ८ ।।

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछे कौन।। ९ ।।

रहिमन ओछे नरन सो, बैर भली न प्रीत।
काटे चाटे स्वान के, दोउ भाँती विपरीत।। १० ।।

खैर खून खाँसी, खुशी, बैर प्रीति मद्यपान।
रहिमन दावे ना दबे जानत सकल जहान।। ११ ।।

रहिमन निज संपति बिना, कोउ न विपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को नहिं रवि सकै बचाय।। १२ ।।

कैकेयी का अनुताप

मैथिलीशरण गुप्त

कवि परिचय :

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म झाँसी के चिरगाँव में 3 अगस्त, सन् 1886 ई० में हुआ था। वे भारतीय जीवन के कुशल चितेरे ने। उनमें बचपन से ही कविता लिखने की प्रवृति थी। उनकी कविता का प्रमुख स्वर राष्ट्रीयता है। गुप्त जी की कीर्ति भारत में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध हुई थी। इसी कारण से महात्मा गांधी जी ने इन्हें राष्ट्रकवि की उपाधि से सम्मानित किया था और आज भी हम लोग उनकी जयंती को एक कवि दिवस के रूप में मनाते हैं। इनके पिताजी का नाम सेठ रामचरण गुप्त और माता का नाम काशीवाई था। इनके पिता रामचरण गुप्त जी एक निष्ठावान् प्रसिद्ध रामभक्त और काव्यानुरागी थे। गुप्त ने सरस्वती सहित विभिन्न पत्रिकाओं में कविताएँ लिखकर हिन्दी साहित्य की दुनिया में प्रवेश किया। 1909 में, उनका पहला प्रमुख काम, रंग में भंग, इंडियन प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया था। भारत-भारती के साथ, उनकी राष्ट्रवादी कविताएँ उन भारतीयों के बीच लोकप्रिय हो गईं, जो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनकी अधिकांश कविताएँ रामायण, महाभारत, बौद्ध कहानियों और प्रसिद्ध धार्मिक नेताओं के जीवन के इर्दगिर्द घूमती हैं। उनकी प्रसिद्ध कृति 'साकेत' रामायण के लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के इर्दगिर्द घूमती है, जबकि दूसरी कृति 'यशोधरा' गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा उनकी कृतियों में देश का अतीत, वर्तमान और भविष्य बोलता है। वह मानववादी, नैतिक और सांस्कृतिक काव्यधारा के विशिष्ट कवि थे। उनके दो महाकाव्य, बीस खंडकाव्य, सत्रह गीतिकाव्य, चार नाटक और गीतिनाट्य, दो संस्मरणात्मक गद्य-कृतियाँ, चार निराख्यानक निबंध और अठारह अनूदित रचनाएँ उपलब्ध हैं।

प्रमुख कृतियाँ-महाकाव्य : साकेत (1931)

खंडकाव्य : रंग में भंग (1909), जयद्रथ-वध (1910), शंकुतला (1914), पंचवटी (1915), किसान (1916), सैरंधी (1927), वकसंहार (1927), वन वैभव (1927), शक्ति (1927), यशोधरा (1932), द्वापर (1936)

मैथिलीशरण गुप्त जी का देहावसान 12 दिसंबर, 1964 को चिरगांव में ही हुआ। इनके स्वर्गवास से हिन्दी साहित्य को जो क्षति पहुंची, उनकी पूर्ति संभव नहीं है।

कैकेयी का अनुताप

"यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को।"
चौंके सब सुन कर अटल कैकेयी-स्वर को।
सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य-तुषारावृता यथा विधु-लेखा।
बैठी थी अचल तथापि असंख्यतरंगा,
वह सिंही अब थी हहा! गोमुखी गंगा—
"हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन लें तुमने स्वयं अभी यह माना।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर, अबलाजन के लिए कौन-सा पथ है?
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोउँ।
ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उनमें सार उसे सब चुन लो।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ?
थी सनक्षत्र शशि-निशा ओस टपकाती,
रोती थी नीरव सभा हृदय थपकाती।
उल्का-सी रानी दिशा दीप्ति करती थी,
सब में भय-विस्मय और खेद भरती थी,
"क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।
जल पंजर-गत अब अरे अधीर, अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे।
पर था केवल क्या ज्वलित भाव ही मन में?

क्या शेष बचा था कुछ न और इस जन में ?
कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य–मात्र, क्या तेरा ?
पर आज अन्य–सा हुआ वत्स भी मेरा।
थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चुके ?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे ?
कहते आते थे अभी यही नर–देही,
'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।'
अब कहें सभी यह हाय ! विरुद्ध विधाता,—
''हैं पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता।''
बस मैंने इसका बाह्य मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा !
युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी—
''रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी।''
निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा–
''धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।''
''सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत–सा भाई।''
पागल–सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई–
''सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।''

स्नेह–निर्झर बह गया है

सूर्यकांत त्रिपाठी ''निराला''

कवि परिचय :

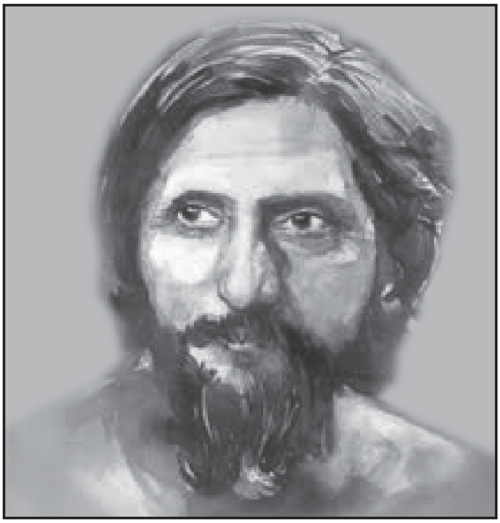

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का जन्म वसंत पंचमी रविवार 21 फरवरी 1896 के दिन हुआ था, अपना जन्मदिन वसंत पंचमी को ही मानते थे। उनकी एक कहानी संग्रह 'लिली' 21 फरवरी 1899 जन्म तिथि पर ही प्रकाशित हुई थी। रविवार को इनका जन्म हुआ था इसलिए वह सूर्ज कुमार के नाम से जाने जाते थे। उनके पिताजी का नाम पंडित राम सहाय था, वह सिपाही की नौकरी करते थे। उनकी माता का नाम रूक्मणी था। जब निराला जी 3 साल के थे तब उनकी माता की मृत्यु हो गई थी, उसके बाद उनके पिता ने उनकी देखभाल की। निराला का व्यक्तित्व घनघोर सिद्धांतवादी और साहसी था। वह सतत संघर्ष–पथ के पथिक थे। यह रास्ता उन्हें विक्षिप्तता तक भी ले गया। उन्होंने जीवन और रचना को अनेक स्तरों पर जिया, इसका ही निष्कर्ष है कि उनका रचना–संसार इतनी विविधता और समृद्धता लिए हुए है। निराला की रचनाओं में अनेक प्रकार के भाव पाए जाते हैं। यद्यपि वे खड़ी बोली के कवि थे, पर ब्रजभाषा व अवधी भाषा में भी कविताएँ गढ़ लेते थे। उनकी रचनाओं में कहीं प्रेम की सघनता है, कहीं आध्यात्मिकता तो कहीं विपन्नों के प्रति सहानुभूति व सम्वेदना, कहीं देश–प्रेम का ज़ज़्बा तो कहीं सामाजिक रूढ़ियों का विरोध व कहीं प्रकृति के प्रति झलकता अनुराग। 1920 ई के आसपास उन्होंने अपना लेखन कार्य शुरू किया था। उनकी सबसे पहली रचना 'एक गीत' जन्म भूमि पर लिखी गई थी। 1916 ई में उनके द्वारा लिखी गई 'जूही की कली' बहुत ही लंबे समय तक के लिए प्रसिद्ध रही थी और वह 1922 ई में प्रकाशित हुई थी।

सूर्यकांत त्रिपाठी के काव्य संग्रह—अनामिका (1923), परिमल (1930), गीतिका (1936), अनामिका (द्वितीय) (1939), तुलसी दास (1939), कुकुरमुत्ता (1942) अणिमा (1943), बेला (1946), नये पत्ते (1946), अर्चना (1950) आराधान (1953), गीतकुंज (1954), सांध्य का कली, अपरा।

उपन्यास — (1931) अप्सरा (1933), अलका (1936), प्रभावती (1936), निरूपमा (1936), कुल्लीभाट (1938 - 39) आदि। कहानी संग्रह – लिलि (1934) सखी (1935) सुकुल की बीबी (1938 - 39)।

15 अक्टूबर, 1961 को अपनी यादें छोड़कर निराला इस लोक को अलविदा कह गये पर मिथक और यथार्थ के बीच अन्तर्विरोधों के बावजूद अपनी रचनात्मकता को यथार्थ की भावभूमि पर टिकाये रखने वाले निराला आज भी हमारे बीच जीवन्त हैं। इनकी मृत्यु प्रयाग में हुई थी।

स्नेह–निर्झर बह गया है

स्नेह–निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की वह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है–''अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ–
जीवन दह गया है।''

''दिये हैं मैने जगत को फूल–फल,
किया है अपनी प्रतिभा से चकित–चल,
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल–
ठाट जीवन का वही
जो ढह गया है।''

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा,
मैं अलक्षित हूँ यही
कवि कह गया है।

साहित्य ‘ख’
गद्य

अर्धनारीश्वर

रामधारी सिंह 'दिनकर'

लेखक परिचय :

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 23 सितंबर 1908 ई. में सिमरिया, मुंगेर (बिहार) में एक सामान्य किसान 'रवि सिंह' तथा उनकी पत्नी 'मनरूप देवी' के पुत्र के रूप में हुआ था। दिनकर जी ने गाँव के 'प्राथमिक विद्यालय' से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। रामधारी सिंह दिनकर एक ओजस्वी राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत कवि के रूप में जाने जाते थे। उनकी कविताओं में छायावादी युग का प्रभाव दिखाई देता है। वे सदैव युग चेतना के साथ चलते रहे। यही कारण है कि गाँधीवाद से प्रभावित होने पर भी उन्होंने 'कुरूक्षेत्र' की रचना की तथा अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाया। दिनकर के प्रथम तीन काव्य—संग्रह —'रेणुका' (1935 ई.) 'हुंकार' (1938 ई.) और 'रसवन्ती' (1939 ई.) उनके आरंम्भिक आत्म मंथन के युग की रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त कुरूक्षेत्र, रश्मि रथी, उर्वशी आदि काव्य ग्रंथ के अतिरिक्त गद्य साहित्य मिट्टी की ओर रेती के फूल, अर्धनारीश्वर, वेणुवन, संस्कृति के चार अध्याय आदि रचनाओं में दिनकर ने अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है। दिनकर अपने युग के प्रमुखतम कवि ही नहीं, एक सफल और प्रभावपूर्ण गद्य लेखक भी थे। सरल भाषा और प्रांजल शैली में उन्होंने विभिन्न साहित्यिक विषयों पर निबंध के अलावा बोधकथा, डायरी, संस्मरण तथा दर्शन व इतिहासगत तथ्यों के विवेचन भी लिखे। 24 अप्रैल, 1974 को दिनकर जी अपने आपको अपनी कविताओं में हमारे बीच जीवित रखकर सदा के लिये अमर हो गये।

अर्धनारीश्वर

अर्धनारीश्वर शंकर और पार्वती का कल्पित रूप है, जिसका आधा अंग पुरुष का और आधा अंग नारी का होता है। एक ही मूर्ति की दो आँखे : एक रसमयी और दूसरी विकरालय एक ही मूर्ति की दो भुजाएँ : एक त्रिशूल उठाए हुए और दूसरी की पहुँची पर चूड़ियाँ और उँगलियाँ अलक्तक से लालय एवं एक ही मूर्ति के दो पाँव : एक जरीदार साड़ी से आवृत और दूसरा बाघम्बर से ढँका हुआ।

एक हाथ में डमरू, एक में वीणा परम उदार।

एक नयन में गरल, एक में संजीवन की धार।

जटाजूट में लहर पुण्य की, शीतलता–सुखकारी।

बालचन्द्र दीपित त्रिपुण्ड पर, बलिहारी, बलिहारी।

स्पष्ट ही, यह कल्पना शिव और शक्ति के बीच पूर्ण समन्वय दिखाने को निकाली गई होगी, किन्तु इसकी सारी व्याप्तियाँ वहीं तक नहीं रुकतीं। अर्धनारीश्वर की कल्पना में कुछ इस बात का भी संकेत है कि नर–नारी पूर्ण रूप से समान है एवं उनमें से एक के गुण दूसरे के दोष नहीं हो सकते अर्थात् नरों में नारियों के गुण आएँ तो इससे उनकी मर्यादा हीन नहीं होती, बल्कि उनकी पूर्णता में वृद्धि ही होती है।

किन्तु पुरुष और स्त्री में अर्धनारीश्वर का यह रूप आज कहीं भी देखने में नहीं आता। संसार में सर्वत्र पुरुष पुरुष है और स्त्री स्त्री। नारी समझती है कि पुरुष के गुण सीखने से उसके नारीत्व में बट्टा लगेगा। इसी प्रकार, पुरुष भी स्त्रियोचित गुणों को अपनाकर समाज में स्त्रैण कहलाने से घबराता है। स्त्री और पुरुष के गुणों के बीच एक प्रकार का विभाजन हो गया है तथा विभाजन की रेखा को लाँघने में नर और नारी, दोनों को भय लगता है।

किन्तु ऐसा लगता है कि गुणों का बँटवारा करते समय पुरुष ने नारी से उसकी राय नहीं पूछी, अपने मन से उसने जहाँ चाहा, नारी को बिठा दिया। स्वयं तो वह वृक्ष बन बैठा और नारी को उसने लता बना दिया। स्वयं तो वह वृंत बन गया और नारी को उसने कली मान लिया। तब से धूप पुरुष और चाँदनी नारी रही है। ग्रीष्म नर और वर्षा मादा रही है। विचार पति और भावना पत्नी रही है। जहाँ भी कर्म का कोई क्षेत्र है, अधिकार की कोई भूमि है और सत्ता का कोई सीधा उत्स है, उस पर कब्जा नारी का नहीं, नर का माना जाता है। नर है विधाता का मुख्य तन्तुवाय जो वस्त्र बुनकर तैयार करता है, नारी का काम उस वस्त्र पर रंग के छींटे डालना है। नर है कुदाल चलानेवाला बलशाली किसान जो मिट्टी तोड़कर अन्न उपजाता है, नारी का काम दानों को अछोरना–पछोरना है। नर है नदियों का वेगमय प्रवाह, नारी उसमें लहर बनकर उठती–गिरती रहती है। सिंहासन तो वस्तुत: राजा के लिए ही होता है। रानी उसके वामांग की शोभा मात्र है। सत्य है राजा की ग्रीवा और विशाल वक्षोदेश, रानी उन पर मन्दार–हार बनकर झूलने के लिए है। राजा काया और रानी छाया के प्रतीक हैं। सत्य का साकार रूप तो राजा ही होता है रानी है, कल्पना की रंगीन जाली और सपनों की मीठी मुसकान जो जीवन में उतरी तो वाह–वाह और नहीं उतरी तो वाह–वाह! कहावत चल पड़ी है।

पुरुष एनेछे दिवसेर ज्वाला तप्त रौद्र दाह।
कामिनी एनेछे यामिनी–शान्ति समीरण, वारिवाह।

दिवस की ज्वाला और तप्त धूप–ये पुरुष की लाई हुई चीजें हैं। कामिनी तो अपने साथ यामिनी की शान्ति लाती है।

किन्तु कवि की यह कल्पना झूठी है। यदि आदिमानव और आदिमानवी आज मौजूद होते तो ऐसी कल्पना से सबसे अधिक आश्चर्य उन्हें ही होता और वे कदाचित कहते भी कि 'आपस में धूप और चाँदनी का बँटवारा हमने नहीं किया था। हम तो साथ–साथ उनमें थे तथा धूप और चाँदनी में, वर्षा और आतप में साथ ही साथ घूमते भी थे। बल्कि आहार–संचय को भी हम साथ ही निकलते थे और अगर कोई जानवर हम पर टूट पड़ता तो हम एक साथ उसका सामना भी करते थे।'

उन दिनों नर बलिष्ठ और नारी इतनी दुर्बल नहीं थी, न आहार के लिए ही एक को दूसरे पर अवलम्बित रहना पड़ता था। नारी की पराधीनता तब आरंभ हुई जब मानव जाति ने कृषि का आविष्कार किया जिसके चलते नारी घर में और पुरुष बाहर रहने लगा। यहाँ से जिन्दगी दो टुकड़ों में बँट गई : घर का जीवन सीमित और बाहर का जीवन निस्सीम होता गया एवं छोटी जिन्दगी बड़ी जिन्दगी के अधिकाधिक अधीन होती चली गई। नारी की पराधीनता का यह संक्षिप्त इतिहास है।

नर और मादा पशुओं में भी थे और पक्षियों में भी। किन्तु पशुओं और पक्षियों ने अपनी मादाओं पर आर्थिक परवशता नहीं लादी। लेकिन, मनुष्य की मादा पर यह पराधीनता आप–से–आप लद गई और इस पराधीनता ने नर–नारी से वह सहज दृष्टि भी छीन ली जिससे नर–पक्षी अपनी मादा को या मादा अपने नर को देखती है। कृषि का विकास सभ्यता का पहला सोपान था, किन्तु इस पहली ही सीढ़ी पर सभ्यता ने मनुष्य से भारी कीमत वसूल कर ली। आज प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को फूलों का आनन्दमय भार समझता है और प्रत्येक पत्नी अपने पति को बहुत कुछ उसी दृष्टि से देखती है जिस दृष्टि से लता अपने वृक्ष को देखती होगी।

इस पराधीनता के कारण नारी अपने अस्तित्व की अधिकारिणी नहीं रही। उसके सुख और दु:ख, प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा, यहाँ तक कि जीवन और मरण पुरुष की मर्जी पर टिकने लगे। उसका सारा मूल्य इस बात पर ठहरा कि पुरुषों को उसकी कोई आवश्यकता है या नहीं। इसी से नारी की पद–मर्यादा प्रवृत्तिमार्ग के प्रचार से उठती और निवृत्ति–मार्ग के प्रचार से गिरती रही है। जो प्रवृत्तिमार्गी हुए, उन्होंने नारी को गले से लगाया, क्योंकि जीवन से वे आनन्द चाहते थे और नारी आनन्द की खान थी। किन्तु जो निवृत्तिमार्गी निकले, उन्होंने जीवन के साथ नारी को भी अलग ढकेल दिया, क्योंकि नारी उसके किसी काम की चीज नहीं थी। प्राचीन विश्व में जब वैयक्तिक मुक्ति की खोज मनुष्य–जीवन की सबसे बड़ी साधना मानी जाने लगी, तब झुंड–के–झुंड विवाहित लोग संन्यास लेने लगे और उनकी अभागिनी पत्नियों के सिर पर जीवित वैधव्य का पहाड़ टूटने लगा। जरा उन आँसुओं की कल्पना कीजिए जो उन अभागिनियों की आँखों से बहते होंगे, जिनके पति परमार्थ–लाभ के लिए उनका त्याग कर देते थे। जरा उस बेबसी को भी ध्यान में लाइए जो इस अनुभूति से उठती होगी कि आखिर जो संन्यास लेता है, वह निष्ठुर, कायर और कठोर नहीं, बल्कि पुण्यात्मा, साहसी और शायद सबसे बड़ा वीर है। और हाय री नारी! जो इन परिस्थितियों से हारकर, स्वेच्छया, अपने–आपको

सचमुच ही, पुण्य की बाधा और पाप की खान मानकर पछाड़ खाकर रह जाती थी।

बुद्ध और महावीर ने कृपा करके नारियों को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया था, किन्तु यह अधिकार भी नारी के हाथ सुरक्षित न रह सका। जैनों के बीच जब दिगम्बर-सम्प्रदाय निकला, तब धर्माचार्य नारियों की भिक्षुणी होने वाली बात से घबरा उठे और धर्म-पुस्तक में उन्होंने एक नये नियम का विधान किया कि नारियों का भिक्षुणी होना व्यर्थ है, क्योंकि मोक्ष नारी-जीवन में नहीं मिल सकता। नारियाँ घर में ही रहकर दान-पुण्य करें और उस दिन की प्रतीक्षा करें जब उनका जन्म पुरुष-योनि में होगा। जब वे पुरुष होकर जनमेंगी, संन्यास वे तभी ले सकेंगी और तभी उन्हें मुक्ति भी मिलेगी और बुद्ध ने भी एक दिन आयुष्मान् आनन्द से, ईषत् पश्चात्ताप के साथ कहा कि 'आनन्द! मैंने जो धर्म चलाया था, वह पाँच सहस्त्र वर्ष तक चलनेवाला था, किन्तु अब वह केवल पाँच सौ वर्ष चलेगा, क्योंकि नारियों को मैंने भिक्षुणी होने का अधिकार दे दिया है।'

धर्मसाधक महात्मा और साधु नारियों से भय खाते थे। विचित्र बात तो यह है कि इनमें से कई महात्माओं ने ब्याह भी किया और फिर नारियों की निन्दा भी की।

कबीर साहब का एक दोहा मिलता है:

नारी तो हम हूँ करी, तब ना किया विचार।
जब जानी तब परिहरी, नारी महा विकार।।

नारियों की यह अवहेलना हमारे अपने काल तक भी पहुँची है। बर्नार्ड शॉ ने नारी को अहेरिन और नर को अहेर माना है। तात्पर्य यह कि अहेर को अहेरिन के पाश से बचकर चलना चाहिए। बहुत नीचे के स्तर पर कुछ ऐसी ही प्रतिक्रिया उन कवियों की भी है जो नारी को 'नागिन' या 'जादूगरनी' समझते हैं। लेकिन ये सब झूठी बातें हैं, जिनकी ईजाद पुरुष इसलिए करता है कि उनसे उसे अपनी दुर्बलता अथवा कल्पित श्रेष्ठता के दुलराने में सहायता मिलती है। असल में, विकार नारी में भी है और नर में भी तथा नाग और जादूगर के गुण भी नारी में कम, पुरुष में अधिक होते हैं एवं आखेट तो मुख्यत: पुरुष का ही स्वभाव है।

इन सबसे भिन्न रवीन्द्रनाथ, प्रसाद और प्रेमचन्द — जैसे कवियों और रोमांटिक चिन्तकों में नारी का जो रूप प्रकट हुआ, वह भी उसकी अर्धनारीश्वरी-रूप नहीं है। प्रेमचन्द ने कहा है कि 'पुरूष जब नारी के गुण लेता है तब वह देवता बन जाता है। किन्तु नारी जब नर के गुण सीखती है तब वह राक्षसी हो जाती है'

इसी प्रकार, प्रसाद जी की इड़ा के विषय में यदि यह कहा जाए कि इड़ा वह नारी है जिसने पुरुषों के गुण सीखे हैं तो निष्कर्ष यही निकलेगा कि प्रसाद जी भी नारी को पुरुषों के क्षेत्र से अलग रखना चाहते थे। और रवीन्द्रनाथ का मत तो और भी स्पष्ट है। वे कहते हैं:

नारी यदि नारी हय।

शुधू शुधू धरणीर शोभा, शुधू आलो,

शुधू भालोवासा, शुधू सुमधुर छले,

शतरूप भंगिमाय पलके-पलके

फुटाय-जड़ाए बन्दो बेंधे हेंसे केंदे

सेवाये सोहागे छेपे चेपे थाके सदा

तबे तार सार्थक जनम। की होइवे

कर्म-कीर्ति, वीर्यबल, शिक्षा-दीक्षा तार ?

(अर्थात् नारी की सार्थकता उसकी भंगिमा के मोहक और आकर्षक होने में है, केवल पृथ्वी की शोभा, केवल आलोक, केवल प्रेम की प्रतिमा बनने में है। कर्मकीर्ति, वीर्यबल और शिक्षा-दीक्षा लेकर वह क्या करेगी ?

मेरा अनुमान है कि ऐसी प्रशस्तियों से ललनाएँ अभी भी बुरा नहीं मानतीं। सदियों की आदत और अभ्यास से उनका अन्तर्मन भी यही कहता है कि नारी-जीवन की सार्थकता पुरुष को रिझाकर रखने में है। यह सुनना उन्हें बहुत अच्छा लगता है कि नारी स्वप्न है, नारी सुगन्ध है, नारी पुरुष की बाँह पर झूलती हुई जूही की माला है, नारी नर के वक्षस्थल पर मन्दार का हार है। किन्तु यही वह पराग है जिसे अधिक-से-अधिक उँडेलकर, हम नवयुग के पुरुष, नारियों के भीतर उठनेवाले स्वातंत्र्य के स्फुलिंगों को मन्द रखना चाहते हैं।

पतियों का अभिशप्त काल समाप्त हो गया। अब नारी विकारों की खान और पुरुषों की बाधा नहीं मानी जाती है। वह प्रेरणा का उद्‌गम, शक्ति का स्रोत और पुरुषों की क्लान्ति की महौषधि हो उठी है। फिर भी, नारी अपनी सही जगह पर नहीं पहुँची है। पुरुष नारी से अब यह कहने लगा है कि 'तुम्हें घर से बाहर निकलने की क्या जरूरत है ? कमाने को मैं अकेला काफी हूँ। तुम घर बैठे खर्च किया करो।' किन्तु इतना ही यथेष्ट नहीं है। नारियों को सोचना चाहिए कि पुरुष ऐसा कहता क्यों है। स्पष्ट ही, इसलिए कि नारी को वह अपनी क्रीड़ा की वस्तु मानता है, आराम के समय अपने मनोविनोद का साधन समझता है। इसलिए वह नहीं चाहता कि आनन्द की इतनी अच्छी मूर्ति पर थोड़ी भी धूल या थोड़ा भी धुएँ का धब्बा लगे।

नारी और नर एक ही द्रव्य की ढली दो प्रतिमाएँ हैं। आरम्भ में दोनों बहुत कुछ समान थे। आज भी प्रत्येक नारी में कहीं-न-कहीं कोई नर प्रच्छन्न है और प्रत्येक नर में कहीं-न-कहीं एक क्षीण नारी छिपी हुई है। किन्तु सदियों से नारी अपने भीतर के नर को और नर अपने भीतर की नारी को बेतरह दबाता आ रहा है। परिणाम यह है कि आज सारा जमाना ही मरदाना मर्द और औरतानी औरत का जमाना हो उठा है। पुरुष इतना कर्कश और कठोर हो उठा है कि युद्धों में अपना रक्त बहाते समय उसे यह ध्यान भी नहीं रहता कि रक्त के पीछे जिनका सिन्दूर बहनेवाला है, उनका क्या हाल होगा। और न सिन्दूरवालियों को ही इसकी फिक्र है कि और नहीं तो, उन जगहों पर तो उनकी राय खुले जहाँ सिन्दूर पर आफत आने की आशंका है। कौरवों की सभा में यदि सन्धि की वार्ता कृष्ण और दुर्योधन के बीच न होकर कुन्ती और गांधारी के बीच हुई होती, तो बहुत सम्भव था कि महाभारत नहीं मचता। किन्तु कुन्तियाँ और गांधारियाँ तब भी निश्चेष्ट थीं और आज भी निश्चेष्ट हैं। बल्कि द्वापर से कलिकाल तक पहुँचते-पहुँचते वे अपने भीतर की नरता का और भी अधिक दलन कर चुकी हैं। जहाँ कहीं फूलों का प्रदर्शन और रेशमी वस्त्रों की हाट है, नारियाँ अपने मन से वहीं जमा

होती हैं। जिन कांडों से फूलों के बाग उजड़ते और रेशमी वस्त्रों के बाजार जलकर खाक हो जाते हैं, उनके संचालन और नियंत्रण का सारा भार उन्होंने पुरुषों पर डाल रखा है। आधी दुनिया उछलने–कूदने, आग लगाने और उसे बुझाने में लगी हुई है और आधी दुनिया फूलों की सैर में है।

नर–नारी के प्रचलित संबंधों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव संसार के इतिहास पर पड़ रहा है और जब तक ये संबंध नहीं सुधरते, शान्ति के मार्ग की सारी बाधाएँ दूर नहीं होगी। नारी कोमलता की आराधना करते–करते इतनी कोमल हो गई है कि अब उसे दुर्बल कहना चाहिए। उसने पौरुष से अपने–आपको इतना विहीन बना लिया है कि कर्म के बड़े क्षेत्रों में पाँव धरते ही उसकी पत्तियाँ कुम्हलाने लगती हैं और पुरुष में कोमलता की जो प्यास है, उसे नारी भली भाँति शान्त कर देती है। फिर पुरुष अपने भीतर कोमलता का विकास क्यों करें।

इस स्थिति से बाहर निकलने का रास्ता वह नहीं है जिसे रोमांटिक कवियों और चिन्तकों ने बतलाया है, बल्कि वह जिसकी ओर संकेत गांधी और मार्क्स करते हैं। निवृत्ति–मार्गियों की तरह नारी से दूर भागने की बात निरी मूर्खता की बात है और भोगवादियों के समान नारी को निरे भोग की वस्तु मान बैठना और भी गलत है। नारी केवल नर को रिझाने अथवा उसे प्रेरणा देने को नहीं बनी है। जीवन–यज्ञ में उसका भी अपना हिस्सा है और वह हिस्सा घर तक ही सीमित नहीं, बाहर भी है। जिसे भी पुरुष अपना कर्मक्षेत्र मानता है, वह नारी का भी कर्मक्षेत्र है। नर और नारी, दोनों के जीवनोद्देश्य एक हैं। यह अन्याय है कि पुरुष तो अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए मनमाने विस्तार का क्षेत्र अधिकृत कर ले और नारियों के लिए घर का छोटा कोना छोड़ दे।

जीवन की प्रत्येक बड़ी घटना केवल पुरुष प्रवृत्ति से नियंत्रित और संचालित होती है। इसीलिए उसमें कर्कशता अधिक, कोमलता कम दिखाई देती है। यदि इस नियंत्रण और संचालन में नारियों का भी हाथ हो तो मानवीय संबंधों में कोमलता की वृद्धि अवश्य होगी।

यही नहीं, प्रत्युत, प्रत्येक नर को एक हद तक नारी और प्रत्येक नारी को एक हद तक नर बनाना भी आवश्यक है। गाँधीजी ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में नारीत्व की भी साधना की थी। उनकी पोती ने उन पर जो पुस्तक लिखी है, उसका नाम ही 'बापू, मेरी माँ' है। दया, माया, सहिष्णुता और भीरुता, ये स्त्रियोचित गुण कहे जाते हैं। किन्तु, क्या इन्हें अंगीकार करने से पुरुष के पौरुष में कोई दोष आनेवाला है ? दया, माया और सहिष्णुता ही नहीं, भीरुता का भय एक अच्छा पक्ष है जो मनुष्य को अनावश्यक विनाश से बचाता है। उसी प्रकार अध्यवसाय, साहस और शूरता का वरण करने से भी नारीत्व की मर्यादा नहीं घटती।

अर्धनारीश्वर केवल इसी बात का प्रतीक नहीं है कि नारी और नर जब तक अलग हैं तब तक दोनों अधूरे हैं, बल्कि इस बात का भी कि पुरुष में नारीत्व की ज्योति जगे, और यह कि प्रत्येक नारी में भी पौरुष का स्पष्ट आभास हो।

महा माँगती प्राण–प्राण में सजी कुसुम की क्यारी,

स्वप्न–स्वप्न में गूंज सत्य की, पुरुष–पुरुष में नारी। (1954 ई.)

('वेणुवन' पुस्तक से)

पुत्र–प्रेम

मुंशी प्रेमचंद

लेखक परिचय :

मुंशी प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1980 वाराणसी से चार मिल दूर लमही गाँव में हुआ था। उनका असली नाम धनपत राय श्रीवास्तव था। 1906 से 1935 के बीच लिखा गया प्रेमचंद का साहित्य इन तीस वर्षों का सामाजिक सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसमें उस दौर के समाजसुधार आन्दोलनों, स्वाधीनता संग्राम तथा प्रगतिवादी आन्दोलनों के सामाजिक प्रभावों का स्पष्ट चित्रण है। उनमें दहेज, अनमेल विवाह, पराधीनता, लगान, छुआछूत, जाति भेद, विधवा विवाह, आधुनिकता, स्त्री–पुरुष समानता आदि उस दौर की सभी प्रमुख समस्याओं का चित्रण मिलता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनके साहित्य की मुख्य विशेषता है। मुंशी प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा 'नवाब राय' उपनाम से प्रकाशित उनकी प्रारंभिक रचनाओं से शुरू हुई। 'प्रेमचंद' नाम अपनाने के बाद ही उनकी साहित्यिक प्रतिभा वास्तव में निखरी। उन्होंने उपन्यास, लघु कथाएँ, निबंध और नाटकों की विविध शृंखला का निर्माण करते हुए हिन्दी और उर्दू में प्रचुर मात्रा में लिखा। प्रेमचंद का लेखन भारतीय समाज में प्रचलित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर केन्द्रित था, जिसमें आम आदमी के लिए सहानुभूति पर गहरा जोर था। उनके 'गोदान', 'निर्मला', और 'गबन' जैसे उपन्यास मानवीय भावनाओं और सामाजिक गतिशीलता के व्यावहारिक चित्रण के लिए जाने जाते हैं। अपने काम के माध्यम से प्रेमचंद ने सामाजिक सुधार लाने वाले लोगों की दुर्दशा के बारे में जागरुकता बढ़ाने का प्रयास किया। भारतीय साहित्य में उनके योगदान ने उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि दी, जिससे भारतीय इतिहास में सबसे प्रभावशाली लेखकों में से एक के रूप में उनकी विरासत मजबूत हुई।

प्रमुख रचनाएँ : *उपन्यास–असरारे मआबिद (हिन्दी में देवस्थान रहस्य), प्रेमा, रूठी रानी, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि और गोदान, मंगलसूत्र (अपूर्ण)।*

कहानी संग्रह : *मानसरोवर (8 भाग), सप्तसरोज, नवनिधि आदि।*

नाटक *— कर्बला, संग्राम, प्रेम की बेदी*

निबन्ध *— महाजनी सभ्यता, पुराना जमाना नया जमाना आदि।*

8 अक्टूबर 1936 को मुंशी प्रेमचंद की बनारस में मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी ने भी उन पर एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था– प्रेमचंद घर में।

पुत्र–प्रेम

बाबू चैतन्यदास ने अर्थशास्त्र खूब पढ़ा था, और केवल पढ़ा ही नहीं था, उसका यथायोग्य व्यवहार भी वे करते थे। वे वकील थे, दो–तीन गांवों में उनकी जमींदारी भी थी, बैंक में भी कुछ रुपये थे। यह सब उसी अर्थशास्त्र के ज्ञान का फल था। जब कोई खर्च सामने आता तब उनके मन में स्वभावत: प्रश्न होता था– इससे स्वयं मेरा उपकार होगा या किसी अन्य पुरुष का? यदि दो में से किसी का कुछ भी उपकार न होता तो वे बड़ी निर्दयता से उस खर्च का गला दबा देते थे। 'व्यर्थ' को वे विष के समान समझते थे। अर्थशास्त्र के सिद्धांत उनके जीवन–स्तंभ हो गये थे।

बाबू साहब के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्रभुदास था, छोटे का शिवदास। दोनों कालेज में पढ़ते थे। उनमें केवल एक श्रेणी का अंतर था। दोनों ही चतुर, होनहार युवक थे। किन्तु प्रभुदास पर पिता का स्नेह अधिक था। उसमें सदुत्साह की मात्रा अधिक थी और पिता को उसकी जात से बड़ी–बड़ी आशाएं थीं। वे उसे विद्योन्नति के लिए इंग्लैंड भेजना चाहते थे। उसे बैरिस्टर बनाना उनके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

किन्तु कुछ ऐसा संयोग हुआ कि प्रभुदास को बी०ए० की परीक्षा के बाद ज्वर आने लगा। डाक्टरों की दवा होने लगी। एक मास तक नित्य डाक्टर साहब आते रहे, पर ज्वर में कमी न हुई। दूसरे डाक्टर का इलाज होने लगा। पर उससे भी कुछ लाभ न हुआ। प्रभुदास दिनों दिन क्षीण होता चला जाता था। उठने–बैठने की शक्ति न थी। यहाँ तक कि परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का शुभ–संवाद सुनकर भी उसके चेहरे पर हर्ष का कोई चिह्न न दिखाई दिया। वह सदैव गहरी चिंता में डूबा रहता था। उसे अपना जीवन बोझ–सा जान पड़ने लगा था। एक रोज चैतन्यदास ने डाक्टर साहब से पूछा– यह क्या बात है कि दो महीने हो गये और अभी तक दवा का कोई असर नहीं हुआ?

डाक्टर साहब ने संदेहजनक उत्तर दिया– मैं आपको संशय में नहीं डालना चाहता। मेरा अनुमान है कि यह ट्युबरक्युलासिस है।

चैतन्यदास ने व्यग्र होकर कहा– तपेदिक?

डाक्टर – जी हां, उसके सभी लक्षण दिखायी देते हैं।

चैतन्यदास ने अविश्वास के भाव से कहा, मानो उन्हें कोई विस्मयकारी बात सुन पड़ी हो– तपेदिक हो गया।

डाक्टर ने खेद प्रकट करते हुए कहा– यह रोग बहुत ही गुप्तरीति से शरीर में प्रवेश करता है।

चैतन्यदास– मेरे खानदान में तो यह रोग किसी को न था।

डाक्टर– संभव है, मित्रों से इसके जर्म (कीटाणु) मिले हों।

चैतन्यदास कई मिनट तक सोचने के बाद बोले– अब क्या करना चाहिए?

डाक्टर– दवा करते रहिये। अभी फेफड़ों तक असर नहीं हुआ है। इनके अच्छे होने की आशा है।

चैतन्यदास– आपके विचार में कब तक दवा का असर होगा?

डाक्टर– निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। लेकिन तीन–चार महीने में ये स्वस्थ हो जायेंगे। जाड़ों में इस रोग का जोर कम हो जाया करता है।

चैतन्यदास– अच्छे हो जाने पर ये पढ़ने में परिश्रम कर सकेंगे?

डाक्टर– मानसिक परिश्रम के योग्य तो ये शायद् ही हो सकें।

चैतन्यदास– किसी सेनेटोरियम (पहाड़ी स्वास्थ्यालय) में भेज दूँ तो कैसा हो?

डाक्टर– बहुत ही उत्तम।

चैतन्यदास– तब ये पूर्णरीति से स्वस्थ हो जाएंगे?

डाक्टर– हो सकते हैं, लेकिन इस रोग को दबा रखने के लिए इनका मानसिक परिश्रम से बचना ही अच्छा है।

चैतन्यदास नैराश्य भाव से बोले– तब तो इनका जीवन ही नष्ट हो गया।

गर्मी बीत गयी। बरसात के दिन आये, प्रभुदास की दशा दिनोंदिन बिगड़ती गई। वह पड़े–पड़े बहुधा इस रोग पर की गई बड़े–बड़े डाक्टरों की व्याख्याएँ पढ़ा करता था। उनके अनुभवों से अपनी अवस्था की तुलना किया करता। पहले कुछ दिनों तक तो वह अस्थिरचित–सा हो गया था। दो–चार दिन भी दशा संभली रहती तो पुस्तकें देखने लगता और विलायत यात्रा की चर्चा करता। दो–चार दिन भी ज्वर का प्रकोप बढ़ जाता तो जीवन से निराश हो जाता। किन्तु कई मास के पश्चात जब उसे विश्वास हो गया कि इस रोग से मुक्त होना कठिन है तब उसने जीवन की भी चिंता छोड़ दी। पथ्यापथ्य का विचार न करता, घरवालों की निगाह बचाकर औषधियाँ जमीन पर गिरा देता। मित्रों के साथ बैठकर जी बहलाता। यदि कोई उससे स्वास्थ्य के विषय में कुछ पूछता तो चिढ़कर मुँह मोड़ लेता। उसके भावों में एक शांतिमय उदासीनता आ गई थी और बातों में एक दार्शनिक मर्मज्ञता पाई जाती थी। वह लोक–रीति और सामाजिक प्रथाओं पर बड़ी निर्भीकता से आलोचनाएँ किया करता। यद्यपि बाबू चैतन्यदास के मन में रह–रहकर शंका उठा करती थी कि जब परिणाम विदित ही है तब इस प्रकार धन का अपव्यय करने से क्या लाभ, तथापि वे कुछ तो पुत्र–प्रेम और कुछ लोक–मत के भय से धैर्य के साथ दवा–दर्पण करते जाते थे।

जाड़े का मौसम था। चैतन्यदास पुत्र के सिरहाने बैठे हुए डाक्टर साहब की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे थे। जब डाक्टर साहब टेम्परेचर लेकर (थर्मामीटर लगाकर) कुर्सी पर बैठे तब चैतन्यदास ने पूछा– अब तो जाड़ा आ गया। आपको कुछ अंतर मालूम होता है?

डाक्टर– बिल्कुल नहीं, बल्कि रोग और भी दुस्साध्य होता जाता है।

चैतन्यदास ने कठोर स्वर में पूछा– तब आप लोग क्यों मुझे इस भ्रम में डाले हुए थे कि जाड़े में अच्छे हो जायेंगे ? इस प्रकार दूसरों की सरलता का उपयोग करना अपना मतलब साधने का साधन हो तो हो, इसे सज्जनता कदापि नहीं कह सकते।

डाक्टर ने नम्रता से कहा– ऐसी दशाओं में हम केवल अनुमान कर सकते हैं और अनुमान सदैव सत्य नहीं होते। आपको ज़ेरबारी अवश्य हुई, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ मेरी इच्छा आपको भ्रम में डालने की नहीं थी।

शिवदास बड़े दिन की छुट्टियों में आया हुआ था, इसी समय वह कमरे में आ गया और डाक्टर साहब से बोला– आप पिता जी की कठिनाइयों का स्वयं अनुमान कर सकते हैं। अगर उनकी बात नागवार लगी तो उन्हें क्षमा कीजिएगा।

चैतन्यदास ने छोटे पुत्र की ओर वात्सल्य की दृष्टि से देखकर कहा– तुम्हें यहां आने की क्या जरूरत थी ? मैं तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ कि यहाँ मत आया करो। लेकिन तुमको सबर ही नहीं होता।

शिवदास ने लज्जित होकर कहा– मैं अभी चला जाता हूँ। आप नाराज न हों। मैं केवल डाक्टर साहब से यह पूछना चाहता था कि भाई साहब के लिए अब क्या करना चाहिए।

डाक्टार साहब ने कहा– अब केवल एक ही साधन और है। इन्हें इटली के किसी सेनेटोरियम में भेज देना चाहिए।

चैतन्यदास से सजग होकर पूछा– कितना खर्च होगा ?

'ज्यादा से ज्यादा तीन हजार। साल–भर रहना होगा।'

'निश्चय है कि वहां से अच्छे होकर आवेंगे ?'

'जी नहीं। यह तो एक भयंकर रोग है, साधारण बीमारियों में भी कोई बात निश्चय रूप से नहीं कहीं जा सकती।'

'इतना खर्च करने पर भी वहां से ज्यों के त्यों लौट आये तो ?'

'तो ईश्वर की इच्छा। आपको यह तसकीन हो जाएगी कि इनके लिए मैं जो कुछ कर सकता था, कर दिया।'

आधी रात तक घर में प्रभुदास को इटली भेजने के प्रस्ताव पर वाद–विवाद होता रहा। चैतन्यदास का कथन था कि एक संदिग्ध फल के लिए तीन हजार का खर्च उठाना बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल है। शिवदास भी उनसे सहमत था। किन्तु उसकी माता इस प्रस्ताव का बड़ी दृढ़ता के साथ विरोध कर रही थी। अंत में माता की धिक्कारों का यह फल हुआ कि शिवदास लज्जित होकर उसके पक्ष में हो गया। बाबू साहब अकेले रह गये। तपेश्वरी ने तर्क से काम लिया। पति के सद्भावों को प्रज्वलित करने की चेष्टा की। धन की नश्वरता की लोकोक्तियाँ कहीं। इन शस्त्रों से विजय–लाभ न हुआ तो अश्रु–वर्षा करने लगी। बाबू साहब जल–बिन्दुओं के इस शर–प्रहार के सामने न ठहर सके। इन शब्दों में हार स्वीकार की–अच्छा भाई, रोओ मत। जो कुछ कहती हो वही होगा।

तपेश्वरी – तो कब ?

'रुपये हाथ में आने दो।'

'तो यह क्यों नहीं कहते कि भेजना ही नहीं चाहते ?'

'भेजना चाहता हूँ किन्तु अभी हाथ खाली है। क्या तुम नहीं जानतीं ?'

'बैंक में तो रुपये हैं ? जायदाद तो है ? दो-तीन हजार का प्रबन्ध करना ऐसा क्या कठिन है ?'

चैतन्यदास ने पत्नी को ऐसी दृष्टि से देखा मानो उसे खा जायेंगे और एक क्षण के बाद बोले-बिल्कुल बच्चों की-सी बातें करती हो। इटली में ऐसी कोई संजीवनी नहीं रखी हुई है जो तुरंत चमत्कार दिखायेगी। जब वहां भी केवल प्रारब्ध ही की परीक्षा करनी है तो सावधानी से कर लेंगे। पूर्व पुरुषों की संचित जायदाद और रखे हुए रुपये मैं अनिश्चित हित की आशा पर बलिदान नहीं कर सकता।

तपेश्वरी ने डरते-डरते कहा- आखिर, आधा हिस्सा तो प्रभुदास का भी है ?

बाबू साहब तिरस्कार करते हुए बोले- आधा नहीं, उसमें मैं अपना सर्वस्व दे देता, जब उससे कुछ आशा होती, वह खानदान की मर्यादा और ऐश्वर्य बढ़ाता और इस लगाए हुए धन के फलस्वरूप कुछ कर दिखाता। मैं केवल भावुकता के फेर में पड़कर धन का ह्रास नहीं कर सकता।

तपेश्वरी अवाक् रह गयी। जीतकर भी उसकी हार हुई।

इस प्रस्ताव के छ: महीने बाद शिवदास बी.ए. पास हो गया। बाबू चैतन्यदास ने अपनी जमींदारी के दो आने बंधक रखकर कानून पढ़ने के निमित्त उसे इंग्लैंड भेजा। उसे बंबई तक खुद पहुँचाने गये। वहाँ से लौटे तो उनके अन्त:करण में सदिच्छाओं से परिमित लाभ होने की आशा थी। उनके लौटने के एक सप्ताह पीछे अभागा प्रभुदास अपनी उच्च अभिलाषाओं को लिए हुए परलोक सिधारा।

चैतन्यदास मणिकर्णिका घाट पर अपने संबंधियों के साथ बैठ चिता-ज्वाला की ओर देख रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। पुत्र-प्रेम एक क्षण के लिए अर्थ-सिद्धांत पर गालिब हो गया था। उस विरक्तावस्था में उनके मन में यह कल्पना उठ रही थी- संभव है, इटली जाकर प्रभुदास स्वस्थ हो जाता। हाय! मैंने तीन हजार का मुँह देखा और पुत्र-रत्न को हाथ से खो दिया। यह कल्पना प्रतिक्षण सजग होती थी और उनको ग्लानि, शोक और पश्चाताप के कणों से बेध रही थी। रह-रहकर उनके हृदय में वेदना की शूल-सी उठती थी। उनके अंदर की ज्वाला उस चिता-ज्वाला से कम दग्धकारिणी न थी। अकस्मात् उनके कानों में शहनाइयों की आवाज आयी। उन्होंने आँख ऊपर उठाई तो मनुष्यों का एक समूह एक अर्थी के साथ आता हुआ दिखाई दिया। वे सब के सब ढोल बजाते, गाते, पुष्प आदि की वर्षा करते चले आते थे। घाट पर पहुँचकर उन्होंने अर्थी उतारी और चिता बनाने लगे। उनमें से एक युवक आकर चैतन्यदास के पास खड़ा हो गया। बाबू साहब ने पूछा- किस मुहल्ले में रहते हो ?

युवक ने जवाब दिया- हमारा घर देहात में है। कल शाम को चले थे। ये हमारे बाप थे। हम लोग यहाँ कम आते हैं, पर दादा की अंतिम इच्छा थी कि हमें मणिकर्णिका घाट पर ले जाना।

चैतन्यदास– ये सब आदमी तुम्हारे साथ हैं ?

युवक – हाँ, और लोग पीछे आते हैं। कई सौ आदमी साथ आये हैं। यहाँ तक आने में सैकड़ों उठ गये पर सोचता हूँ कि बूढ़े पिता की मुक्ति तो बन गई। धन और है ही किसलिए ?

चैतन्यदास– उन्हें क्या बीमारी थी ?

युवक ने बड़ी सरलता से कहा, मानो वह अपने किसी निजी संबंधी से बात कर रहा हो– बीमारी का किसी को कुछ पता नहीं चला। हरदम ज्वर चढ़ा रहता था। सूखकर कांटा हो गये थे। तीन वर्ष तक खाट पर पड़े रहे। जिसने जहाँ बताया लेकर गये। चित्रकूट, हरिद्वार, प्रयाग सभी स्थानों में ले–लेकर घूमे। वैद्यों ने जो कुछ कहा उसमें कोई कसर नहीं की।

इतने में युवक का एक और साथी आ गया और बोला– साहब, मुँह देखी बात नहीं, नारायण लड़का दे तो ऐसा दे। इसने रुपयों को ठीक से समझा। घर की सारी पूंजी पिता की दवा–दारू में स्वाहा कर दी। थोड़ी–सी जमीन तक बेच दी पर काल बली के सामने आदमी का क्या बस है।

युवक ने गद्‌गद स्वर से कहा– भैया, रुपया–पैसा हाथ का मैल है। कहां आता है, कहां जाता है, मनुष्य नहीं मिलता। जिंदगानी है तो कमा खाउँगा। पर मन में यह लालसा तो नहीं रह गयी कि हाय! यह नहीं किया, उस वैद्य के पास नहीं गया, नहीं तो शायद बच जाते। हम तो कहते हैं कि कोई हमारा सारा घर–द्वार लिखा ले, केवल दादा को एक बोल बुला दे। इसी माया–मोह का नाम जिंदगानी है, नहीं तो इसमें क्या रखा है ? धन से प्यारी जान, जान से प्यारा ईमान। बाबू साहब, आपसे सच कहता हूँ, अगर दादा के लिए अपने बस की कोई बात उठा रखता तो आज रोते न बनता। अपना ही चित्त अपने को धिक्कारता। नहीं तो मुझे इस घड़ी ऐसा जान पड़ता है कि मेरा उद्धार एक भारी ऋण से हो गया। उनकी आत्मा सुख और शांति से रहेगी तो मेरा सब तरह कल्याण ही होगा।

बाबू चैतन्यदास सिर झुकाए ये बातें सुन रहे थे। एक–एक शब्द उनके हृदय में शर के समान चुभता था। इस उदारता के प्रकाश में उन्हें अपनी हृदय–हीनता, अपनी आत्मशून्यता, अपनी भौतिकता अत्यंत भयंकर दिखायी देती थी। उनके चित्त पर इस घटना का कितना प्रभाव पड़ा, यह इसी से अनुमान किया जा सकता है कि प्रभुदास के अन्त्येष्टि संस्कार में उन्होंने हजारों रुपये खर्च कर डाले। उनके सन्तप्त हृदय की शांति के लिए अब एकमात्र यही उपाय रह गया था।

दूध का दाम

वनफूल

लेखक परिचय :

''बनफुल '' का जन्म १९ जुलाई १८९९ को बिहार के मनिहारी नामक कस्बे में हुआ था। ''बनफूल'' का मूल नाम बलाइ चाँद मुखोपाध्याय था। उनकी माता का नाम मृणालिणी देवी और पिता का नाम सत्यचरण मुखोपाध्याय था। छह भाइयों एवं दो बहनो में ''बनफूल'' सबसे बड़े थे। १९१४ में जब ''बनफूल'' साहेबगंज के रेलवे हाई स्कूल में आये, तो यहाँ उन्होंने 'विकास' (बँगला में-'बिकास') नाम से एक हस्तलिखित पत्रिका निकालनी शुरु की। उनकी खुद की रचनाएं भी इस पत्रिका में रहती थीं। अगले ही साल उनकी एक कविता स्तरीय बंगला पत्रिका 'मालंच' में छपी। इसके चलते संस्कृत के अध्यापक ने उन्हें डाँटा भी था कि वे यहाँ पढ़ाई करने आये है या कविताएं लिखने! प्रधानाध्यापक भी साहित्यिक गतिविधियों को पढ़ाई-लिखाई में बाधक मानते थे। अत: किशोर उम्र के ''बनफूल'' ने लिखना छोड़ दिया। परन्तु आगे चलकर उन्होंने 'वनफूल' उपनाम से लेखन कार्य किया। उन्होंने कोलकाता मेडिकल कॉलेज से अपनी मेडिकल की पढ़ाई को भी पूरा किया। इसके पश्चात् गैर सरकारी प्रयोगशाला में नौकरी की। फिर मुर्शिदाबाद के एक सरकारी अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी के रूप में कार्य किया। जल्दी ही नौकरी छोड़कर भागलपुर में आकर बस गए। वहाँ पैथोलॉजी लैब चलाने के साथ लेखन कार्य में व्यस्त रहे। लम्बे समय तक वहाँ रहने के कारण लोग उन्हें 'भागलपुर के लेखक' कहकर पुकारते थे। वनफूल का रचना संसार उपन्यास:- तृणखण्ड (१९३५), वैतरणी तीरे (१९३६), किछुखण (१९३७), द्वैरथ (१९३७), मृगया (१९४०), निर्मोक (१९४०), रात्रि (१९४१), से ओ आमि (१९४३), जंगम (चार खण्डों मे, १९४३-४५), सप्तर्षि (१९४५), अग्नि (१९४६), सॉल्टलेक, कोलकाता में ही ७ फरवरी १९७९ को ''बनफूल'' का देहावसान हुआ। उनके घर के सामने वाली सड़क का नाम आज ''बनफूल'' पथ है।

दूध का दाम

रेलगाड़ी के आने का अंदाजा स्पष्ट होने लगा था। अब जब कभी भी वह प्लेटफॉर्म पर पहुँचने ही वाली थी। उसे पकड़ने के लिए अत्यंत बेशकीमती सुंदर वस्त्रों में सजी-धजी, सुंदर-सुडौल तन्वंगी सुदर्शना, सुरूपा युवतियाँ इठलाती, बलखाती हुई स्टेशन के उस प्लेटफॉम पर आ पहुँची थीं। सुंदर युवतियों के उस झुंड के आसपास चारों ओर कई बंगाली नौजवान भी घिरने शुरू हो गए थे। कोई-कोई तो इस तरह के भाव अपने चेहरों पर बनाए हुए थे, जैसे कि कहीं आ-भिड़ने में उनकी अपनी कोई दिलचस्पी नहीं है। जबकि कुछ तो अपनी पूरी समझदारी और चतुराई के साथ उन्हीं के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहे थे। सुन्दर युवतियों के उस मधु-गुँजार भरे माहौल में एक ढली हुई अवस्था की वृद्धा-महिला भी उसी रेलगाड़ी को पकड़ने की आशा में बढ़ती चली आई थी कि तभी वहाँ ढीले-ढाले ढंग से बाँधकर रखे किसी व्यक्ति के बिस्तरबंद के फीते में उनका पाँव जा उलझा और वह वहीं धड़ाम से गिर पड़ी। उससे उन्हें काफी चोट आई। वह जोर-जोर से कराहने लगीं, परंतु उसकी ओर किसी ने देखा तक नहीं। उनकी सहायता करने के लिए किसी ने भी न कुछ कहा, न कुछ किया। करने की कोई बात भी तो नहीं थी। कारण, स्त्रियों के प्रति सभ्य-शिष्टाचार निभाने की भावना की जो बात है, वह तो विदेशियों के प्रभाव के रूप में वहाँ आई है, लेकिन वह केवल उनके अपने देश की युवतियों के लिए ही कार्य रूप में परिणत होती है।

इसलिए जो स्त्रियाँ युवती नहीं हैं, उनके प्रति शिष्टाचार दिखाने की आवश्यकता नए जमाने के नवयुवकों में कहाँ हैं ? वैसे वहाँ जितने मुसाफिर थे, वे सभी-के-सभी केवल उन युवतियों के झुंड को लेकर ही प्रकट रूप में अथवा छिपे-छिपे तौर पर व्यस्त नहीं थे। जिन सज्जन महोदय के बिस्तरबंद के फैले फीते में पैर के अटक जाने से वह वृद्धा गिर पड़ी थीं, वे अच्छे-खासे पढ़े-लिखे शिक्षित और सुसभ्य समाज के सम्मानित पुरुष थे। वे भी वहाँ पास में ही खड़े थे। उन्होंने उस वृद्धा को डाँट-फटकार भरे लहजे में एक उपदेश वाक्य झाड़ दिया— ''रास्ते पर निगाह गड़ाकर चल नहीं सकती, अगर जरा और तेज का झटका लगता तो मेरे बिस्तरबंद का फीता ही टूट जाता!''

पक्के फर्श पर गिर पड़ने के कारण उस वृद्ध-महिला के दाहिने पैर में गहरी चोट आई थी। फिर भी जैसे-तैसे खड़ी होकर वह लँगड़ाते-लँगड़ाते प्लेटफॉर्म पर तेजी से आगे बढ़ने लगी; क्योंकि गाड़ी प्लेटफॉर्म पर आ लगी थी। इस डिब्बे-उस डिब्बे में दौड़-धूप करते हुए भी वह किसी एक में घुस नहीं पा रही थी। हालाँकि चाहे जैसे भी हो, किसी-न-किसी डिब्बे में अपने लिए उसे एक ठिकाना जुटाना ही था। रेलगाड़ी ज्यादा देर तक अब रुकेगी नहीं, जबकि किसी भी डिब्बे में घुसना असंभव हो रहा था। जैसे-तैसे, गिरते-पड़ते वह एक इंटरक्लास (उस जमाने में रेलगाड़ियों में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के अलावा एक इंटरक्लास का ड्योढ़ा डिब्बा भी होता था, जो आजकल के आरक्षित द्वितीय श्रेणी के शयनयानों जैसा होता था) के डिब्बे में घुस आई। उसे उसमें चढ़ते देख उस डिब्बे में बैठे सारे-के-सारे यात्री विरोध में चीखने-चिल्लाने लगे।

डिब्बे में चढ़ आने के बाद भी, उसे बैठने की कोई जगह नहीं मिली। वैसे उस डिब्बे में जगह की कोई कमी नहीं थी। सुसभ्य समाज के एक माननीय बंगाली–महोदय अपने सारे बंडल–बिस्तर और सामान को बैठने की सीट पर फैलाकर ही पाँव पसारे बैठे थे। अगर वे जरा सा भी सरक जाते तो उस वृद्धा को बैठने की जगह बहुत आसानी से दे सकते थे। सरककर जगह तो उन्होंने नहीं दी, परंतु उपदेश देने से नहीं चूके, ''घुसने को तो डिब्बे में घुस आई, अब जरा यह तो बताओ बुढ़िया कि बैठोगी कहाँ ?''

''मैं आप लोगों के पैरों के पास फर्श पर ही जैसे–तैसे बैठ जाउँगी, भाई साहब ! बस दो ही स्टेशनों की तो बात है, उसके बाद रेलगाड़ी जहाँ रुकेगी, बस वहीं उतर जाऊँगी। आप लोगों को बहुत अधिक देर तक असुविधा नहीं पहुँचाउँगी।''

उन्हीं सज्जन के जूतों के जोड़ों को थोड़ा सा सरकाकर वह उनके पैरों के तलवों के पास ही बैठ गई। उनके बैठ जाने से भी कोई खास असुविधा किसी को नहीं हुई, क्योंकि एक तो वह वृद्धा काफी दुबली–पतली और साधारण कद–काठी की थी, दूसरे वह अपने उस शरीर को भी काफी सिकोड़–मरोड़कर बैठी थी। उस तरह बैठे रहने से उसे खुद ही काफी असुविधा थी। उधर प्लेटफॉर्म पर उस आदमी के बिस्तरबंद के फीते में पाँव उलझ जाने के कारण गिर पड़ने से पैर में जो मोच आ गई थी; अब घाव के ठंडा पड़ने पर वह अधिक टीस पैदा करने लगी। अब वह सहज–स्वाभाविक ढंग से बैठ भी नहीं पा रही थी। मोच आए पैर को उसने जो फिर ध्यान से देखा, तो पाया कि घाव लगी जगह पर सूजन आ गई है। पैर के फूलने और दर्द के लगातार बढ़ते ही जाने के कारण अब उसके मन में एक भारी दुश्चिंता उठने लगी कि ऐसी हालत में वह इस डिब्बे से नीचे कैसे उतरेगी ? बस दो स्टेशन बाद ही तो उतरना पड़ेगा! आनेवाले उस स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर केवल उतरना ही तो नहीं है, बल्कि वहाँ से फिर दूसरे प्लेटफॉर्म पर जाकर एक और रेलगाड़ी पकड़नी है। जबकि अभी हालत यह है वह अपने पैर को हिला भी नहीं पा रही है; ऐसी हालत में तो खड़ा भी नहीं हुआ जा सकेगा। एक बार उसने उस डिब्बे में चारों ओर निहारा। डिब्बा अनेक बंगाली नागरिकों से भरा हुआ था। हालाँकि उनमें से ज्यादातर युवक थे, जो उसके बच्चों की उम्र के ही थे, कुछेक तो उसके नाती की उम्र के बराबर के भी थे। डिब्बे में उपस्थित लोगों को निहार लेने के बाद और अपने पहले के विभिन्न अनुभवों के आधार पर उसने अच्छी तरह समझ लिया कि आगे स्थिति क्या होगी ! उनमें से कोई भी उसे खड़ा होने और फिर डिब्बे से नीचे उतरने में सहायता करेगा ? इसकी उम्मीद वह नहीं लगा सकी। फिर भी अब तो यह मजबूरी ही थी कि उन्हीं लोगों से सहायता करने की याचना करनी पड़ेगी। नहीं तो और कोई उपाय ही कहाँ रहा ?

उस वृद्धा को जिस स्टेशन पर उतरना था, रेलगाड़ी उस स्टेशन पर जा पहुँची। डिब्बे में बैठे वे सभी लोग हड़बड़ी में उतरने लगे, जिन्हें वहाँ उतरना था। परंतु उस वृद्धा की ओर किसी ने आँख उठाकर देखा तक नहीं।

''अरे, ओ भाई लोगों ! जरा मुझे भी नीचे उतार दो न, मैं अपनी चोट लगी टाँग के कारण खड़ी नहीं हो पा रही हूँ।'' वृद्धा ने जो यह करुण विनती की थी, वह डिब्बे में उपस्थित सभी लोगों के कानों में पहुँची। परंतु उनमें से अधिकांश सज्जनों ने ऐसी मुद्रा बनाई, जैसे लगा कि वे कुछ सुन नहीं सके।

एक सज्जन, जिनकी मुद्रा ऐसी थी कि उन्होंने सुन लिया है, बोल पड़े— ''इस भिखमंगी औरत का साहस देखा आप लोगों ने ? अरे, कहाँ तो बिना टिकट के ही इस इंटरक्लास डिब्बे में चढ़कर जा रही है और अब यह हम लोगों से सेवा भी करवाना चाहती है !''

हालाँकि उस महोदय ने उस वृद्धा को भिखारी समझा, परंतु वह वृद्धा-महिला न तो भिखारी थी और न ही पहनावे-ओढ़ावे या शक्त-सूरत अथवा आचार-व्यवहार में किसी भी तरह भिखारी दिखाई दे रही थी। उनके पास भी रेलवे का टिकट था; वह भी साधारण सेकंड क्लास का न होकर रिजर्व टाइप के इंटरक्लास का ही टिकट था।

एक अन्य सज्जन ने उससे भी और समझदारी भरा विचार प्रकट किया, ''इस असहाय बूढ़ी-औरत को रास्ते पर छोड़ दिया है घरवालों ने। इसका कोई पति अथवा बेटा नहीं है क्या ? कितनी हैरानी की बात है यह ?'' इतना कहकर सिगार के लंबे-लंबे कश खींचते और धुआँ उगलते हुए वह भी नीचे उतर गए। डिब्बे में जो लोग बाकी बचे रह गए थे, उनमें से दो-चार लोगों ने अपने टिफिन-कैरियर खोलकर भोजन करने में अपना मन लगा दिया था। उस वृद्धा की दर्द भरी विनती उन लोगों के कानों में भी गई थी; परंतु उसकी ओर ध्यान देना उन लोगों ने उचित नहीं समझा। थोड़ी देर में वह वृद्धा अपने दोनों हाथों की टेक देकर किसी तरह घिसटते-घिसटते डिब्बे के दरवाजे के सामने पहुँच गई थी, परंतु नीचे उतरने का साहस नहीं कर पा रही थी।

''अरे ओ बुढ़िया ! दरवाजे पर से हट जाओ।'' — एक मारवाड़ी - सज्जन इतना कहकर उसके हटने का इंतजार किए बगैर ही अपने पैरों से उसे धक्का मारते हुए डिब्बे के अंदर जा घुसे। उसके पीछे-पीछे एक बहुत ही हट्टा - कट्टा बलिष्ठ शरीर का कुली भी चला आ रहा था। उसके सिर पर एक बहुत भारी सूटकेस और बँधा हुआ बिस्तरबंद रखा था। कुली के पीछे एक छोकरा भी चढ़ता चला आ रहा था, जिसने अपनी आँखों पर नीला चश्मा लगा रखा था तथा पैरों में चप्पल पहने हुए था। उसकी साज-पोशाक रंग-बिरंगी और बड़े विचित्र प्रकार की थी। उसने एक विचित्र प्रकार की मुद्रा बनाते हुए कहा, ''दयामयी ! कृपया रास्ता तो छोड़ें। ठीक दरवाजे पर क्यों विराजी हुई हैं ?''

''अब तुम्हें कैसे बतलाऊँ, बेटा ! पैर में बहुत जोर से मोच आ गई है। इसी वजह से मैं नीचे उतर नहीं पा रही हूँ।''

''ओह, अच्छा तो यह बात है। ठीक है, जरा मैं देखकर आता हूँ कि कहीं से अस्पताल का स्ट्रेचर उठाकर ला पाता हूँ।'' कहकर वह विचित्र हाव-भाववाला छोकरा प्लेटफॉर्म की उस भीड़ में ऐसा खो गया कि फिर उस दरवाजे पर लौटा ही नहीं।

थोड़ी देर पहले जो बलिष्ठ शरीरवाला कुली अपने सिर पर बक्सों का बोझा लिये हुए डिब्बे में घुसा था, वह बाहर जाने के लिए अब खुले माथे होकर लौट रहा था। बाहर उतरने के लिए जगह खाली न देख वह वहाँ आकर खड़ा हो गया और बोला — ''माई जी ! जरा कृपा करके थोड़ा हटकर बैठो न ! आप नाहक आने-जाने के रास्ते पर क्यों बैठ गई हैं ?''

उसकी बात सुनते ही वृद्धा कुहर–कुहरकर रो पड़ी — ''मुझे बैठना नहीं है, इस स्टेशन पर अभी उतरना है; मगर उतर नहीं पा रही हूँ। मेरे पैरों में इतनी गहरी चोट लगी है कि क्या बताऊँ बेटा!''

''ओह, यह बात है ? आपको जाना कहाँ है ?''

''गया शहर!''

''अच्छा तो अभी आगे दूसरी गाड़ी में चढ़ना भी है। कोई चिंता–फिक्र नहीं। आइए, मैं आपको ले चलता हूँ।'' जिस तरह से एक हृष्ट–पुष्ट बड़ा पुरुष एक नन्हे बच्चे को हाथों में घेरकर गोद में उठाकर अपनी छाती से लगा लेता है, ठीक उसी प्रकार उस कुली ने उस वृद्धा को अपनी दोनों बाँहों में भरकर गोदी में उठा लिया। फिर उसी तरह उठाए–उठाए ही वह उन्हें सीधे प्रथम–श्रेणी के प्रतीक्षालय वाले कमरे में लेकर चला गया। वहाँ उसे एक जगह पर बैठाते हुए बोला, ''माईजी! आप यहीं पर आराम से बैठिए। गया शहर जानेवाली रेलगाड़ी के आने में अभी थोड़ी देरी है; परंतु आप घबराइए नहीं, मैं ठीक समय पर आकर आपको ले जाकर आपकी रेलगाड़ी के डिब्बे में चढ़ा दूँगा।''

प्रतीक्षालय के फर्श पर ही वृद्धा थोड़ी आराम की मुद्रा में बैठ गई। उस कमरे में लंबे हत्थों पर पैर फैलाकर आराम से बैठी जा सकनेवालाी दो आरामकुर्सी पर अंग्रेजी सूट–बूट में सजे – धजे दो बंगाली सम्मानित व्यक्ति अपने–अपने पैर पसारे लंबी ताने लेटे हुए थे। एक सज्जन दैनिक समाचार – पत्र पढ़ने में व्यस्त थे, जबकि दूसरे के हाथ में अंग्रेजी – भाषा की एक मोटी सी किताब थी। उस किताब के मुख पृष्ठ पर मुसकराती हुई मुद्रा में एक अर्धनग्न युवती की तस्वीर छपी हुई थी। उसकी मुसकान को देखते हुए उस वृद्धा के मन में आया, जैसे वह युवती उसकी ओर देखकर उसकी दुर्दशा पर व्यंग्य की हँसी हँसती जा रही है।

उन दोनों सज्जनों के बीच जो बात शुरू हुई, उससे लगा कि वह अभी इसी क्षण आरंभ नहीं हुई है, बल्कि उसके संबंध में काफी कुछ आलोचना – प्रत्यालोचना पहले से होती चली आ रही थी। अब बात इसतरह शुरू हुई, ''सभ्य–समाज का नागरिक शिष्टाचार का रिवाज, कोई उन्हीं पश्चिमी देशों की जागीर थोड़े ही है। स्त्रियों के प्रति अति शालीन शिष्टाचार निभाने की प्रथा हमारे अपने इस देश में बहुत प्राचीनकाल में भी थी — यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते , रमन्ते तत्र देवता (स्त्री जाति की जिस स्थल पर पूजा होती है; वहीं देवता लोग प्रसन्न मन से निवास करते हैं) — यह सुविचार हमारे पुराने स्मृति – शास्त्र में महाराज मनु ने ही लिख रखा है, महाशय!''

जो सज्जन नग्न स्त्री के चित्रोंवाली अंग्रेजी – भाषा की पुस्तक पढ़ रहे थे, उनकी हड़बड़ाहट देख ऐसा जान पड़ा, जैसे यह वाक्य उनके लिए पहली–पहली बार सुनी हुई कोई खबर हो, जिसके बारे में पहले से वे कुछ जानते ही न थे। वे आवेश में उठ खड़े हुए, ''अरे वाह! यह आप क्या कह रहे हैं ? आपने पहले क्यों नहीं बताया ? यदि मैं इस बात को पहले से जानता होता, तो फिर उस अंग्रेज साले को यों ही छोड़ देता क्या ? भला बतलाइए, महाराज मनु के जमाने में भी हमारे देश में स्त्री जाति के प्रति अतिशय शिष्ट और शालीन शिष्टाचार निभाने की परंपरा थी। हमलोग महा पिछड़े हुए बर्बर और जंगली नहीं थे। यह बात मैं उस छोकरे को अच्छी तरह समझा देता।''

वृद्धा ने अनुमान लगाया कि लगता है कि इससे पहले अंग्रेज – जाति का कोई ब्रिटिश साहब यहाँ बैठा होगा, जिसकी भारतीयों के व्यवहार पर और उनकी सभ्यता पर की गई किसी टिप्पणी से ये लोग आहत हो गए थे। उसे लगा कि इन लोगों को उससे तर्क–वितर्क में अवश्य ही मुँह की खानी पड़ी होगी। संभव है कि उस गोरी चमड़ीवाले साहब ने अंग्रेजी पोशाक पहननेवाले काली–चमड़ी के इस बंगाली नौजवान को जंगली और बर्बर कहकर व्यंग्य कर दिया हो! यह सोचकर उन्होंने मन–ही–मन बुदबुदाते हुए कहा, 'इसमें कुछ गलत ही क्या है? मेरे प्यारे नौजवान बालको! तुम लोग अभी भी बर्बर, हिंसक, जंगली और असभ्य ही हो। वैसे शिष्टाचार तुमलोगों में है भी; विशेषकर स्त्रियों के प्रति अति शालीन नागरिक शिष्टाचार तो है ही, परंतु वे सब केवल युवतियों–कन्याओं के साथ व्यवहार करते समय ही दिखाई पड़ता है, औरों के मामलों में वह हवा हो जाता है।' बँगला–भाषा के अलावा वृद्धा संस्कृत और अंग्रेजी का भी सामान्य ज्ञान रखती थी, क्योंकि उस जमाने में अंग्रेजी–माध्यमवाले बेथुन–स्कूल में उसकी शिक्षा–दीक्षा हुई थी।

तभी उस दूसरे बंगाली सज्जन की दृष्टि इस वृद्धा पर पड़ी। वे यकायक उबल पड़े, "अरे–अरे! ये औरत इस जगह पर कहाँ से आ घुसी?"

"लगता है, कोई भीख माँगनेवाली होगी, कुछ पाने की तलाश में घुस आई होगी!" दूसरे बंगाली भद्रपुरुष ने अपने द्वारा लगाए गए अनुमान का खुलासा किया।

"सच कहते हो, भाई! हमारा यह पूरा देश ही भिखारियों से भर गया है। स्वतंत्रता मिलने के बाद से तो भिखमंगों की संख्या बड़ी तेजी से और भी बढ़ गई है। कुछ तो माँग–माँगकर परेशान कर देते हैं, परंतु सभी तो वैसे नहीं हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो मुँह खोलकर नहीं माँग पाते।"

फिर तो दिखाई पड़ा कि बंगाली सुसभ्य नागरिक महोदय ने अपनी जेब से एक पैसा निकालकर फेंक दिया।

उनके ऐसा कर गुजरने पर भी वृद्धा पहले की ही तरह निर्विकार भाव से बैठी रह गई।

"अरे, ओ बुढ़िया! वह पैसा उठा लो, वह पैसा मैंने तुम्हें दिया है।"

इतना होने पर भी वृद्धा ने अपने मुँह से जबान नहीं खोली।

ऐसा होते देख उस दानदाता सभ्य–सुसंस्कृत सज्जन के मन में यह संदेह हुआ कि संभव है, यह बुढ़िया बंगाली नहीं है, इसलिए परिष्कृत वँगला–भाषा में कही हुई उनकी बात को समझ नहीं पा रही है। तब उसने राष्ट्रभाषा हिंदी का व्यवहार किया। राष्ट्रभाषा का ज्ञान उन्हें अभी कुछ पहले ही तब हुआ था, जब अपनी नौकरी में सुविधा पाने के उद्देश्य से उन्होंने राष्ट्रभाषा–हिंदी की एक परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

"उस पैसे को मैने तुम्हें ही दिया है। तुम बिना डरे ही उसे उठा लो।"

उसकी यह बात सुनकर इस बार वृद्धा चुप नहीं रह सकी। वह परिष्कृत बँगला भाषा में कह उठी, "हे महाशयो! मैं कोई भीख माँगनेवाली नहीं। जिसतरह से आपलोग भारतीय रेल के यात्री के रुप में यहाँ हैं, मैं भी भारतीय–रेल की एक यात्री हूँ।"

''अच्छा, तो फिर इस प्रतीक्षालय में क्यों आ गई हो ? तुम्हें यह तो पता ही होगा कि यह कोई साधारण कमरा नहीं है, बल्कि यह उच्च–श्रेणी के टिकटधारकों का प्रतीक्षालय है।''

''जी महाशय! मुझे सब मालूम है और मेरा अपना रेल–टिकट भी उसी श्रेणी का है।'' इतना वह कह ही पाई थी कि दूसरे ही क्षण बलिष्ठ कायावाला वह कुली दरवाजे पर आता हुआ दिखाई पड़ा और वहीं से चिल्लाया, ''उठिए माइजी! अब चलिए। गया शहर को जानेवाली रेलगाड़ी प्लेटफॉर्म पर आ लगी है।'' फिर करीब आकर उसने अपनी बलिष्ठ–भुजाओं में फिर से एक नन्हे बच्चे की तरह उस वृद्धा को गोदी में उठा लिया और उन्हें सँभालकर बाहर लिये चला गया।

गया शहर जानेवाली यात्री रेलगाड़ी में थोड़ी भीड़ थी; परंतु कुली बहुत ही मजबूत कद–काठी का था। आज के जमाने में शारीरिक –शक्ति की सभी जगह विजय होती हे, अत: अपनी इस क्षमता का लाभ उठाते हुए अन्य यात्रियों को डाँट–डपटकर उन्हें सरकाते हुए डिब्बे की एक बेंच के कोने के स्थान में आराम से बैठने की एक अच्छी जगह पाने में सफलता प्राप्त कर ली। उसने वृद्धा को बहुत आराम से वहाँ बिठा दिया। वह जैसे ही डिब्बे से बाहर जाने लगा, वृद्धा ने उसका हाथ पकड़कर उसे दो रुपए दिए।

वृद्धा के इस व्यवहार पर उस कुली के साथ हिंदी–भाषा में जो उनका वार्तालाप हुआ, उसका सारांश इस प्रकार है–

''नहीं माँजी! मैं इतने पैसे नहीं ले सकता। मेरी मजदूरी वस्तुत: कुल आठ आना की ही हुई। फिर आप मुझे आठ आने की जगह ये दो रुपए क्यों दे रही हैं?''

''अरे, वाह! तुमने मेरे लिए इतना कुछ किया। उसका क्या कोई मूल्य नहीं ? ले बेटा! मैंने जानबूझकर ही थोड़ा अधिक दिया है।''

''नहीं माँजी! आप मुझे कृपया क्षमा करेंगी। मै एक मजदूर हूँ और अपनी मजदूरी की ही रोटी कमाता हूँ। मैं अपना धर्म बेचनेवाला नहीं हूँ।''

''नहीं रे! तू तो मेरा बेटा है, बेटा! बेटे का ही तो काम तुमने किया है। जबकि माँ होकर भी मैंने तुम्हें अपना दूध नहीं पिलाया था। आज इस घड़ी में जो ये मामूली से अधिक पैसे दे रही हूँ, उन्हें उस दूध का दाम समझकर ही रख लो, बेटा! जाओ खुश रहो। सुखी रहो। दीर्घायु हो। भगवान् तुम्हारा मंगल करें।'' कहते–कहते वृद्धा का गला भर आया। उनकी आवाज़ काँपने लगी। उनकी दोनों आँखों के कोनों में आँसू की बड़ी–बड़ी बूँदें झिलमिलाने लगीं।

कुछ देर के लिए तो वह कुली आश्चर्यचकित हो काठ–सा खड़ा ही रह गया था, परंतु उसके थोड़ी ही देर बाद उसका सिर अपने आप वृद्धा के चरणों में झुक गया। बड़े आदर के साथ उस वृद्धा को प्रणाम कर वह रेलगाड़ी के उस डिब्बे से नीचे उतर गया।

अनुवादक – महेन्द्रनाथ दुब

पारिभाषिक शब्दावली

1. Accountability – जवाबदेही
2. Ad-hoc – तदर्थ
3. Adjournment – स्थगन
4. Adjustment – समायोजन
5. Agenda – कार्यसूची
6. Agreement – अनुबंध
7. Allotment – आबंटन
8. Allowance – अनुमोदन
9. Authority – अधिकार / प्राधिकरण
10. Autonomous – स्वायत्त
11. Account – लेखा खाता
12. Accountant – लेखाकार
13. Adjustment – समायोजन
14. At-par – सममूल्य पर
15. Audio-Visual display – दृश्य–श्रव्य प्रदर्श
16. Audit – हिसाब–किताब की जांच
17. Audition – श्रवण
18. Auditorium – सभागार
19. Authentic – प्राधिकृत
20. Bench – न्याय पीठ
21. Bye-law – उपविधि
22. Back dated – पूर्व–दिनांकित
23. Bail – जमानत
24. Bearer – वाहक
25. Confiscation – अधिहरण
26. Charge – प्रभार

27. Circular – परिपत्र
28. Compensation – मुआवजा
29. Confirmation – पुष्टीकरण
30. Consent – सहमति
31. Contract – अनुबंध
32. Cash Balance – रोकड़ बाकी
33. Clearing – समाशोधन
34. Commission – दलाली
35. Discretion – विवेक
36. Enclosure – संलग्नक
37. Endorsement – बंदोबस्ती
38. Honorarium – मानदेय
39. Infrastructure – आधारभूत संरचना
40. Memorandum – ज्ञापन
41. Modus operandi – कार्य–प्रणाली
42. Notification – अधिसूचना
43. Lumpsum – एकमुश्त
44. Lease – पट्टा
45. Officiating – स्थानापन्न
46. Postponement – स्थगन
47. Proceedings – कार्यवाही
48. Record – अभिलेख
49. Retirement – सेवा–निवृत्ति
50. Stagnation – स्थिरता

SEMESTER - II

साहित्य 'क'

काव्य

बावरा अहेरी

अज्ञेय

कवि परिचय :

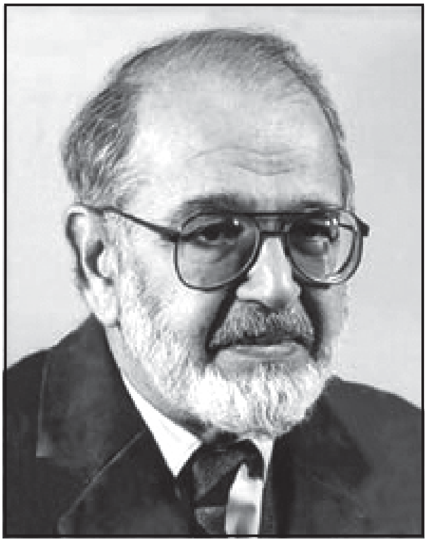

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के कसया, पुरातत्व - खुदाई शिविर में हुआ। बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले कवि हैं। अनेक जापानी हाइकु कविताओं को अज्ञेय ने अनूदित किया। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी और प्रखर कवि होने के साथ ही साथ अज्ञेय की फोटोग्राफ़ी भी उम्दा हुआ करती थी और यायावरी तो शायद उनको दैव-प्रदत्त ही थी। उनके पिता, हीरानंद शास्त्री, एक पुरातत्वविद् थे। उनकी माता व्यंतीदेवी (मृत्यु 1924) थीं, जो अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थीं। हीरानंद शास्त्री और व्यंतीदेवी की 10 संतानें थीं, जिनमें से अज्ञेय चौथे थे।1943 में, उन्होंने तार सप्तक का संपादन और प्रकाशन किया, जो सात युवा लेखकों की कविताओं का संग्रह था। तार सप्तक ने हिंदी कविता में प्रयोगवाद को जन्म दिया, और हिंदी कविता में एक नई प्रवृत्ति स्थापित की, जिसे नई कविता के नाम से जाना जाता है। (नयी कविता)।

अज्ञेय का कविता संग्रह :- भग्नदूत - 1933, चिन्ता-1942, इत्यलम् - 1946, हरी घास पर क्षण भर - 1949, बावरा अहेरी-1954, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये - 1957, अरी ओ करुणा प्रभामय - 1959, आँगन के पार द्वार - 1961, कितनी नावों में कितनी बार (1967) क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970) सागर मुद्रा (1970) पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974) महावृक्ष के नीचे (1977) नदी की बाँक पर छाया (1981) प्रिज़न डेज़ एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में, 1946)।

अज्ञेय की मृत्यु 4 अप्रैल 1987 नई दिल्ली में हुई थी।

बावरा अहेरी

भोर का बावरा अहेरी।
पहले बिछाता है आलोक की
लाल–लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ :
छोटी–छोटी चिड़ियाँ
मँझोले परेवे
बड़े–बड़े पंखी
डनों वाले डील वाले
डौल के बैडौल
उड़ने जहाज़
कलस–तिसूल वाले मंदिर–शिखर से ले
तारघर की नाटी मोटी चिपटी गोल घुस्सों वाली
उपयोग – सुंदरी
बेपनाह कायों को:
गोधूली की धूल को, मोटरों के धुँए को भी
पार्क के किनारे पुष्पिताग्र कर्णिकार की आलोक–खची तन्वि
रूप–रेखा को
और दूर कचरा जलाने वाली कल की उद्दण्ड चिमनियों को, जो
धुआँ यों उगलती हैं मानो उसी मात्र से अहेरी को
हरा देगी!
बावरे अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है :

एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड़ कर क्या तू चला जाएगा ?
ले, मैं खोल देता हूँ कपाट सारे
मेरे इस खँढर की शिरा-शिरा छेद के
आलोक की अनी से अपनी,
गढ़ सारा ढाह कर ढूह भर कर दे :
विफल दिनों की तू कलौंस पर माँज जा
मेरी आँखे आँज जा
कि तुझे देखूँ
देखूँ और मन में कृतज्ञता उमड़ आये
पहनूँ सिरोपे-से ये कनक-तार तेरे —
बावरे अहेरी

दिल्ली, 2 सितम्बर, 1951

निशा निमंत्रण

हरिवंश राय बच्चन

कवि परिचय :

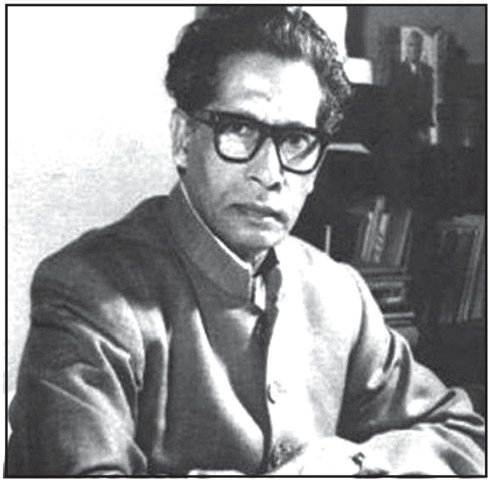

हरिवंश राय बच्चन का जन्म 27 नवंबर 1907 को गांव बाबू पट्टी, जिला प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम प्रताप नारायण श्रीवास्तव एवं उनकी माता का नाम सरस्वती देवी था। बचपन में उनके माता-पिता उन्हें बच्चन नाम से पुकारते थे।

हरिवंश राय ने 1938 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अँग्रेजी साहित्य में एम ए किया व 1952 तक इलाहावाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता रहे।

1926 में इनकी शादी श्यामा से हुई थी। पर 1936 में उनका निधन हो गया। जीवन मे अकेले पड़ जाने के पश्चात् 1941 में बच्चन ने तेजी सुरी से शादी की। आप कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्व पर शोध किए।1955 में कैम्ब्रिज से वापस आने के बाद भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ के रूप में नियुक्त हुए।

आप राज्यसभा के मोननीत सदस्य भी रहे और 1976 में आपको पद्मभूषण की उपाधि मिली। इससे पहले आपको 'दो चट्टानें' (कविता-संग्रह) के लिए 1968 में साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला था। हरिवंश राय बच्चन का निधन 18 जनवरी, 2003 को मुंबई में हुआ।

अपनी काव्य-यात्रा के आरम्भिक दौर में आप 'उमर खैय्याम' के जीवन-दर्शन से बहुत प्रभावित रहे और उनकी प्रसिद्ध कृति, 'मधुशाला' उमर खैय्यआम की रूबाइयों से प्रेरित होकर ही लिखी गई थी। बच्चनजी हालावादी काव्य के अग्रणी कवि हैं।

उनकी प्रमुख रचनाए : मधुबाला, मधुकलश, निशा निमंत्रण, एकांत संगीत, सतरंगिनी, विकल विश्व, खादी के फूल, सूत की माला, मिलन, दो चट्टानें व आरती और अंगारे इत्यादि इनकी मुख्य कृतियां हैं।

निशा निमंत्रण

अब निशा देती निमंत्रण!

महल इसका तम–विनिर्मित,
ज्वलित इसमें दीप अगणित!
द्वार निद्रा के सजे हैं स्वप्न से शोभन–अशोभन!
अब निशा देती निमंत्रण!

भूत–भावी इस जगह पर
वर्तमान समाज होकर
सामने है देश–काल–समाज के तज सब नियंत्रण!
अब निशा देती निमंत्रण!

सत्य कर सपने असंभव!–
पर, ठहर, नादान मानव!–
हो रहा है साथ में तेरे बड़ा भारी प्रवंचन!
अब निशा देती निमंत्रण!

मैं उनका ही होता

गजानन माधव मुक्तिबोध

कवि परिचय :

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जन्म 13 नवंबर, 1917 को श्यौपुर (ग्वलियर) में हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा उज्जैन में हुई। मुक्तिबोध जी के पिता पुलिस विभाग के इंस्पेक्टर थे और उनका तबादला प्राय: होता रहता था। स्वातंत्र्योत्तर प्रगतिशली काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि मुक्तिबोध काहानीकार और समीक्षक भी थे। इन्होंने प्रगतिशील कविता और नई कविता के मध्य सेतु की भाँति कार्य किया। इन्होंने कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचना आदि विधाओं में लिखा और इर क्षेत्र में उनका हस्तक्षेप अलग से महसूस किया जा सकता है। उनकी मृत्यु के पहले श्रीकान्त वर्मा ने उनकी 'एक साहित्यिक की डायरी' जरुर प्रकाशित की थी। मुक्तिबोध की रूचि अध्ययन-अध्यापन पत्रकारिता, समसामयिक राजनीतिक एवं साहित्य के विषयों के लेखन में थी। 1942 के आसपास वे वामपंथी विचारधारा की ओर झुके और शुजालपुर में रहते हुए उनकी वामपंथी चेतना मजबूत हुई। आजीवन ग़रीबी से लड़ते हुए और रोगों का मुकाबला करते हुए 11 सितम्बर, 1964 को नई दिल्ली में मुक्तिबोध की मृत्यु हो गयी। 'अँधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनायें मानी जाती हैं।

उनकी प्रमुख रचनाए : ***कविता संग्रह*** *— चाँद का मुँह टेढ़ा है, भूरी भूरी खाक धूल*

कहानी संग्रह— *काठ का सपना, विपात्र, सतह से उठता आदमी*

आलोचना— *कामायनी : एक पुनर्विचार, नई कविता का आत्मसंघर्ष, नए समीक्षा की समास्याएँ, साहित्य का सौंदर्यशास्त्र।*

आत्माख्यान— *एक साहित्यिक की डायरी*

रचनावली— *मुक्तिबोध रचनावली (6 खंडों में)*

मैं उनका ही होता

मैं उनका ही होता जिनसे
मैंने रूप–भाव पाए हैं।
वे मेरे ही लिए बँधे हैं
जो मर्यादाएँ लाए हैं।
मेरे शब्द, भाव उनके हैं,
मेरे पैर और पथ मेरा,
मेरा अंत और अथ मेरा,
ऐसे किंतु चाव उनके हैं।
मैं ऊँचा होता चलता हूँ
उनके ओछेपन से गिर–गिर,
उनके छिछलेपन से खुद–खुद,
मैं गहरा होता चलता हूँ।

प्रेत का बयान

नागार्जुन

कवि परिचय :

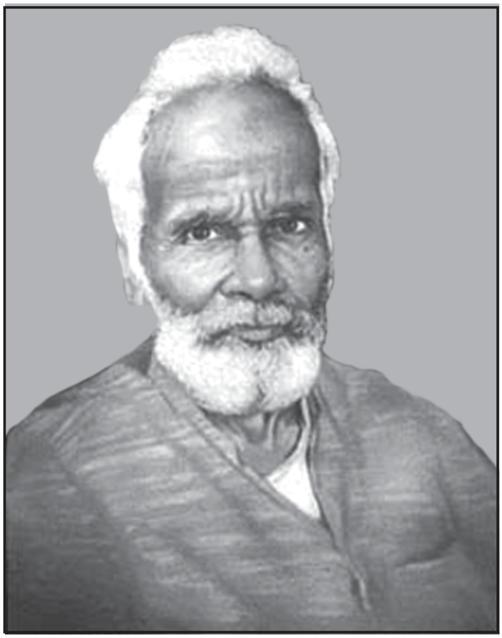

नागार्जुन का जन्म 11 जून सन् 1911 ज्येष्ट मास को उनके ननिहाल 'सतलखा' गाँव जिला मधुबनी में हुआ था। बचपन में ही चार पुत्रों के काल कवलित हो जाने के बाद उनके पिता ने रावणेश्वर वैद्यनाथ (महादेव) से संतान की याचना की थी, अत: उनका जन्म नाम 'वैद्यनाथ' मिश्र रखा गया जो लगभग 25 वर्षों तक किसी न किसी रूप में उनसे चुड़ा रहा। बाबा नागार्जुन ने स्वेच्छापूर्वक 'यात्री' नाम का चयन अपनी मैथिली रचनाओं के लिए किया था। नागार्जुन के पिता का नाम गोकुल मिश्र तथा माता का नाम श्रीमती उमादेवी था। उनकी माता सरल हय्दय, परिश्रमी एवं दृढ़ चरित्र महिला थी। दुर्भाग्य से चार वर्ष की अवस्था में ही बालक बैद्यनाथ को माता उमादेवी के स्नेहांचल मे वंचित होना पड़ा। नागार्जुन के काव्य में अब तक की पूरी भारतीय काव्य परंपरा ही जीवंत रूप में उपस्थित देखी जा सकती है। उन्होंने लगभग 650 कविताओं का सृजन किया है। उनके चौदह काव्य संग्रह एवं दो खण्डकाव्य प्रकाशित है।

प्रमुख रचनाएँ – प्यासी पथराई आँखे, तालाव की मछलियाँ, युगधारा, सतरंगे पंखोवाली, भस्मांकुर (खण्ड काव्य), खून और शोले, पुरानी जूतियों का कोरस।

उपन्यास संग्रह – रतिनाथ की चाची, बल चनमा, बाबा बटेसर नाथ , वरूण के बेटे।

लंबी अवधि तक बीमार रहने के प्रश्चात 5 नवम्बर 1998 ई, को इस असाधारण कवि की जीवन यात्रा पूर्ण हुई। हिन्दी और मैथिली साहित्य में दिए गये उनके अवदानों को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

प्रेत का बयान

"ओ रे प्रेत –"
कड़ककर बोले नरक के मालिक यमराज
"सच–सच बतला!
कैसे मरा तू?
भूख से, अकाल से?
बुखार कालाजार से?
पेचिस बदहजमी, प्लेग महामारी से?
कैसे मरा तू, सच–सच बतला!"
खड़ खड़ खड़ खड़ हड़ हड़ हड़ हड़
काँपा कुछ हाड़ों का मानवीय ढाँचा
नचाकर लंबे चमचों–सा पंचगुरा हाथ
रूखी – पतली किट–किट आवाज़ में
प्रेत ने जवाव दिया –

"महाराज!
सच–सच कहूँगा
झूठ नहीं बोलूँगा
नागरिक हैं हम स्वाधीन भारत के
पूर्णिया जिला है, सूबा बिहार के सिवान पर
थाना धमदाहा, बस्ती रूपउली
जाती का कायस्थ
उमर कुछ अधिक पचपन साल की
पेशा से प्राइमरी स्कूल का मास्टर था
–"किन्तु भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज,
नाम नहीं लीजिएगा
हमारे समक्ष फिर कभी भूख का!!"

निकल गया भाप आवेग का
तदनंतर शांत–स्तंभित स्वर में प्रेत बोला –
''जहाँ तक मेरा अपना सम्बन्ध है
सुनिए महाराज,
तनिक भी पीर नहीं
दु:ख नहीं, दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह न सकी आँत जब पेचिश का हमला..''

सुनकर दहाड़
स्वाधीन भारतीय प्राइमरी स्कूल के
भुखमरे स्वाभिमानी सुशिक्षक प्रेत की
रह गए निरूत्तर
महामहिम नर्केश्वर।

साहित्य 'ख '

गद्य

शिरीष के फूल

'आचार्य' हजारी प्रसाद द्विवेदी

लेखक परिचय :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म 19 अगस्त 1907 में बलिया जिले के दुबे-का छपरा नामक गांव में हुआ। परिवार ज्योतिष विद्या के लिए प्रसिद्ध था। उनके पिता पं. अनमोल द्विवेदी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। प्राथमिक शिक्षा और मिडिल की पढ़ाई द्विवेदी जी ने गांव के स्कूल से ही की। ज्योतिष शास्त्र में आचार्य भी किया।

***हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रमुख रचनाएं** – कल्पलता, विचार और वितर्क, अशोक के फूल, कुटज, विचार-प्रवाह, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, आलोक पर्व (निबंध संग्रह), बाणभट्ट की आत्मकथा, चारूचन्द्र लेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा (उपन्यास), कबीर, सूर साहित्य, हिन्दी साहित्य का आदि-काल, हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास (साहित्येतिहास) आदि।*

***पुरस्कार और सम्मान :** साहित्य अकादमी पुरस्कार (आलोक पर्व पर), भारत सरकार द्वारा पद्‌मभूषण, लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट्‌ की उपाधि।*

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के उन महान रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बांग्ला आदि भाषाओं के साहित्य के साथ इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन आदि का गहन अध्ययन करने के बाद अपने विचारों के समग्रता के साथ प्रस्तुत किया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 4 फरवरी 1979 को पक्षाघात के शिकार हुए और 19 मई 1979 को ब्रेन ट्यूमर से दिल्ली में उनका निधन हो गया।

शिरीष के फूल

जहाँ बैठ के यह लेख लिख रहा हूँ उसके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, शिरीष के अनेक पेड़ हैं। जेठ की जलती धूप में, जबकि धरित्री निर्धूम अग्निकुंड बनी हुई थी, शिरीष नीचे से उपर तक फूलों से लद गया था। कम फूल इस प्रकार की गरमी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं। कर्णिकार और आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल नहीं रहा हूँ। वे भी आस-पास बहुत हैं। लेकिन शिरीष के साथ आरग्वध्य की तुलना नहीं की जा सकती। वह पंद्रह-बीस दिन के लिए फूलता है, वसंत ऋतु के पलाश की भाँति। कबीरदास को इस तरह पंद्रह दिन के लिए लहक उठना पसंद नहीं था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और फिर खंखड़-के-खंखड़ — 'दिन दस फूला फूलिके खंखड़ भया पलास!' ऐसे दुमदारों से तो लँडूरे भले। फूल है शिरीष। बसंत के आगमन के साथ लहक उठता है, आषाढ़ तक जो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भादों में भी निर्घात फूलता रहता है। जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मंत्र प्रचार करता रहता है। यद्यपि कवियों की भाँति हर फूल-पत्ते को देखकर मुग्ध होने लायक हृदय विधाता ने नहीं दिया है, पर नितांत ठूँठ भी नहीं हूँ। शिरीष के पुष्प मेरे मानस में थोड़ा हिल्लोल जरुर पैदा करते हैं।

शिरीष के वृक्ष बड़े और छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मंगल-जनक वृक्षों को अपनी वृक्ष-वाटिका की चहारदीवारी के पास लगाया करता था, उनमें एक शिरीष भी है। (वृहतसंहिता 55,13) अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग और शिरीष के छायादार और घनमसृण हरीतिमा से परिवेष्टित वृक्ष-वाटिका ज़रुर बड़ी मनोहर दिखती होगी। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में बताया है कि वाटिका के सघन छायादार वृक्षों की छाया में ही झूला (प्रेंखा दोला) लगाया जाना चाहिए। यद्यपि पुराने कवि बकुल के पेड़ में ऐसी दोलाओं को लगा देखना चाहते थे, पर शिरीष भी क्या बुरा है! डाल इसकी अपेक्षाकृत कमजोर ज़रुर होती है, पर उसमें झूलनेवालियों का वज़न भी तो बहुत ज़्यादा नहीं होता। कवियों की यही तो बुरी आदत है कि वजन का एकदम खयाल नहीं करते। मैं तुंदिल नरपतियों की बात नहीं कह रहा हूँ, वे चाहें तो लोहे का पेड़ बनवा लें।

शिरीष का फूल संस्कृत-साहित्य में बहुत कोमल माना गया है। मेरा अनुमान है कि कालिदास ने यह बात शुरु-शुरु में प्रचार की होगी। उनका इस पुष्प पर कुछ पक्षपात था (मेरा भी है)। कह गए हैं, शिरीष पुष्प केवल भौंरों के पदों का कोमल दबाव सहन कर सकता है, पक्षियों का बिलकुल नहीं — 'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष पुष्पं न पुनः पतत्रिणाम्।' अब मैं इतने बड़े कवि की बात का विरोध कैसे करूँ? सिर्फ विरोध करने की हिम्मत न होती तो भी कुछ कम बुरा नहीं था, यहाँ तो इच्छा भी नहीं है। खैर, मैं दुसरी बात कह रहा था। शिरीष के फूलों की कोमलता देखकर परवर्ती कवियों ने समझा कि उसका सब-कुछ कोमल है! यह भूल है। इसके फल इतने मजबूत होते हैं कि नए फूलों के निकल आने पर भी स्थान नहीं छोड़ते। जब तक नए फूल-पत्ते मिलकर, धकियाकर उन्हें बाहर नहीं कर देते तब तक वे डटे रहते हैं। वसंत के आगमन के समय जब सारी वनस्थली पुष्प-पत्र से मर्मरित होती रहती है, शिरीष के पुराने फल बुरी तरह खड़खड़ाते रहते हैं। मुझे इनको देखकर उन नेताओं की बात याद आती है, जो किसी प्रकार ज़माने का रुख नहीं पहचानते और जब तक नयी पौध के लोग उन्हें धक्का मारकर निकाल नहीं देते तब तक जमे रहते हैं।

मैं सोचता हूँ कि पुराने की यह अधिकार-लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती ? जरा और मृत्यु, ये दोनों ही जगत के अतिपरिचित और अतिप्रामाणिक सत्य हैं। तुलसीदास ने अफ़सोस के साथ इनकी सच्चाई पर मुहर लगाई थी—'धरा को प्रमान यही तुलसी जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना!' मैं शिरीष के फूलों को देखकर कहता हूँ कि क्यों नहीं फलते ही समझ लेते बाबा कि झड़ना निश्चित है! सुनता कौन हैं ? महाकालदेवता सपासप कोड़े चला रहे हैं, जीर्ण और दुर्बल झड़ रहे हैं, जिनमें प्राणकण थोड़ा भी ऊर्ध्वमुखी है, वे टिक जाते हैं। दुरंत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरंतर चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं, वहीं देर तक बने रहें तो कालदेवता की आँख बचा जाएँगे। भोले हैं वे। हिलते-डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किए रहो तो कोड़े की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे!

एक-एक बार मुझे मालूम होता है कि यह शिरीष एक अद्‌भुत अवधूत है। दुःख हो या सुख, वह हार नहीं मानता। न उधो का लेना, न माधो का देना। जब धरती और आसमान जलते रहते हैं तब भी यह हज़रत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज में आठों याम मस्त रहते हैं। एक वनस्पतिशात्री ने मुझे बताया है कि यह उस श्रेणी का पेड़ है जो वायुमण्डल से अपना रस खींचता है। ज़रुर खींचता होगा। नहीं तो भयंकर लू के समय इतने कोमल तंतुलाल और ऐसे सुकुमार केसर को कैसे उगा सकता था ? अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं। कबीर बहुत-कुछ इस शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवा, पर सरस और मादक। कालिदास भी जरुर अनासक्त योगी रहे होंगे। शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और 'मेघदूत' का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनाविल उन्मुक्त हृदय में उमड़ सकता है। जो कवि अनासक्त नहीं रह सका, जो फक्कड़ नहीं बन सका, जो किए-कराए का लेखा-जोखा मिलानें में उलझ गया, वह भी क्या कवि हैं ? कहते हैं कर्णाट-राज की प्रिया विज्जिका देवी ने गर्वपूर्वक कहा था कि एक कवि ब्रह्मा थे, दूसरे बाल्मीकि और तीसरे व्यास। एक ने वेदों को दिया, दूसरे ने रामायण को और तीसरे ने महाभारत को। इनके अतिरिक्त और कोई यदि कवि होने का दावा करे तो मैं कर्णाट-राज की प्यारी रानी उनके सिर पर अपना बायाँ चरण रखती हूँ — 'तेषां मूर्ध्नि ददामि वामचरणं कर्णाट-राजप्रिया!' मैं जानता हूँ कि इस उपालंभ से दुनिया का कोई कवि हारा नहीं है, पर इसका मतलब यह नहीं कि कोई लजाया नहीं तो उसे डाँटा भी न जाए। पर मैं कहता हूँ कवि बनना है मेरे दोस्तों, तो फक्कड़ बनो। शिरीष की मस्ती की ओर देखो। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नहीं। मरने दो!

कालिदास वज़न ठीक रख सकते थे, क्योंकि वे अनासक्त योगी की स्थिर-प्रज्ञता और विदग्ध प्रेमी का हृदय पा चुके थे। कवि होने से क्या होता है ? मैं भी छंद बना लेता हूँ, तुक जोड़ लेता हूँ और कालिदास भी छंद बना लेते थे— तुक भी जोड़ ही सकते होंगे इसलिए हम दोनों एक श्रेणी के नहीं हो जाते। पुराने सहदय ने किसी ऐसे ही दावेदार को फटकारते हुए कहा था — 'वयमपि कवयः कवयस्ते कालिदासाद्या!' मैं तो मुग्ध और विस्मय-विमूढ़ होकर कालिदास के एक-एक श्लोक को देखकर हैरान हो जाता हूँ। अब इस शिरीष के फूल का ही एक उदाहरण लीजिए। शकुंतला बहुत सुंदर थी। सुंदर क्या होने से कोई हो जाता है ? देखना चाहिए कि कितने सुंदर हृदय से वह सौन्दर्य डुबकी लगाकार निकला है। शकुंतला कालिदास के हृदय से निकली थी। विधाता की ओर से कोई कार्पण्य नहीं था, कवि की ओर से भी नहीं। राजा दुष्यन्त भी अच्छे-भले प्रेमी थे। उन्होंने शकुंतला का एक चित्र बनाया था। लेकिन रह-रहकर उनका मन खीझ उठता

था। उहूँ, कहीं-न-कहीं कुछ छूट गया है। बड़ी देर के बाद उन्हें समझ में आया कि शकुंतला के कानों में वे उस शिरीष पुष्प को देना भूल गए हैं, जिसके केसर गंडस्थल तक लटके हुए थे, और रह गया है शरच्चंद्र की किरणों के समान कोमल और शुभ्र मृणाल का हार।

कालिदास सौंदर्य के बाह्य आवरण को भेदकर उसके भीतर तक पहुँच सकते थे, दुख हो कि सुख, वे अपना भाव-रस उस अनासक्त कृषीवल की भाँति खींच लेते थे जो निर्दलित ईक्षुदंड से रस निकाल लेता है। कालिदास महान थे, क्योंकि वे अनासक्त रह सके थे। कुछ इसी श्रेणी की अनासक्ति आधुनिक हिंदी कवि सुमित्रानंदन पंत में हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ में यह अनासक्ति थी। एक जगह उन्होंने लिखा — 'राजोद्यान का सिंहद्वार कितना ही अभ्रभेदी क्यों न हो, उसकी शिल्पकला कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, वह यह नहीं कहता कि हममें आकर ही सारा रास्ता समाप्त हो गया। असल गंतव्य स्थान उसे अतिक्रम करने के बाद ही है, यही बताना उसका कर्तव्य है।' फूल हो या पेड़, वह अपने-आप में समाप्त नहीं है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अँगुली है। वह इशारा है।

शिरीष तरु सचमुच पक्के अवधूत की भाँति मेरे मन में ऐसी तरंगें जगा देता है जो ऊपर की ओर उठती रहती हैं। इस चिलकती धूप में इतना सरस वह कैसे बना रहता है? क्या ये बाह्य परिवर्तन — धूप, वर्षा, आँधी, लू-अपने आपमें सत्य नहीं हैं? हमारे देश के ऊपर से जो यह मार-काट, अग्निदाह, लूट-पाट, खून-खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। क्यों मेरा मन पूछता है कि ऐसा क्यों संभव हुआ? क्योंकि शिरीष भी अवधूत है। शिरीष वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर है। गांधी भी वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर हो सका था। मैं जब-जब शिरीष की ओर देखता हूँ तब-तब हूक उठती है—हाय, वह अवधूत आज कहाँ है!

झुटपुटा

भीष्म साहनी

लेखक परिचय :

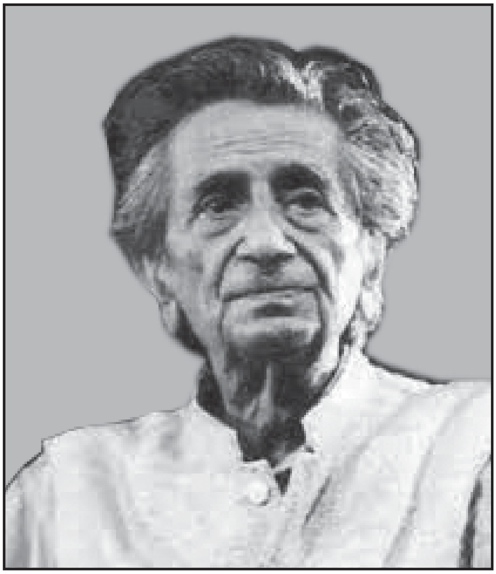

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त 1915 में रावलपिंडी (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था। उनके पिता का नाम 'श्री हरवंशलाल साहनी' व माता का नाम 'श्रीमती लक्ष्मी देवी' था। बता दें कि मशहूर अभिनेता रहे 'बलराज साहनी' उनके बड़े भाई थे। बड़े भाई के साथ अभिनेता और निर्देशक के रूप में उन्होंने काम किया। इनकी तमस रचना पर गोविन्द निहलानी ने टेलीफिल्म भी बनाई जो काफी चर्चित रही। मध्यवर्गीय परिवार में जन्में भीष्म साहनी का आरंभिक बचपन रावलपिंडी में ही बीता। इसके पश्चात सन् 1958 में पंजाब विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि हासिल की। भीष्म साहनी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हिन्दी व संस्कृत में हुई। उन्होंने स्कूल में उर्दू व अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1937 में 'गवर्नमेंट कॉलेज', लाहौर से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. किया। भीष्म साहनी ने 1965 से 1967 तक "नई कहानियाँ" का सम्पादन किया। साथ ही वे प्रगतिशील लेखक संघ तथा एफ्रो एशियाई लेखक संघ से सम्बद्ध रहे, उनकी पत्रिका लोटस से भी ये जुड़े रहे। ये 'सहमत' नामक नाट्यसंस्थापक और अध्यक्ष थे, जो अंतर - सांस्कृतिक संगठन को बढ़ावा देने वाला संगठन है, जिसकी स्थापना थियेटर कलाकार सफदर हाशमी की याद में की गई। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं;

HÑFÎÜFFÕF: झरोखे, तमस, बसन्ती, मायादास की माडी, कुन्तो, नीलू निलिमा निलोफर;

=+ÙFÎFU ÕF;Fù: मेरी प्रिय कहानियां, भाग्यरेखा, वांगचू, निशाचर;

ÎFF©=+: हनूश, माधवी, कबीरा खड़ा बजार में, मुआवज़े;

EF¶ÛF=+»FF: बलराज माय ब्रदर;

ÙFFáF=+»FF: गुलेल का खेल।

भीष्म साहनी की मृत्यु 11 जुलाई 2003 को दिल्ली में हुई थी।

झुटपुटा

दूध के बूथ के बाहर लोगों की लम्बी लाइन लगी थी। दो दिन बाद दूध मिलने की उम्मीद बँधी थी। लोग लपक–लपककर आने लगे थे, और लाइन लंबी खिंचती चली गई थी। देखते ही देखते उसका दूसरा सिरा पार्क तक जा पहुँचा। लोग चुप थे। लंबी लाइन के बावजूद माहौल में सन्नाटा था। कल दूध नहीं आया था। कल सब्जीवाले की दूकान के बाहर भी दिनभर टाट का परदा टँगा रहा था। मक्खन–डबलरोटी की दुकानें भी कुछ देर के लिए खुली थी, फिर बंद हो गई थीं।

कल की तो बात ही दूसरी थी। कल तो लूट–पाट और आगजनी की घटनाएँ घटती रही थीं। इस समय प्रभात का झुटपुटा था, और काल की घटनाओं के अवशेष साफ–साफ दिखाई नहीं पड़ रहे थे। बूथ से थोड़ा हटकर ऐन चौराहे के बीचोबीच एक जली हुई मोटर का काला कंकाल–सा पड़ा था। जलानेवाले उसे आग लगाते समय, दाएँ बाजू उल्टा कर गए थे, जिससे वह और भी ज्यादा कुरुप और भयावह नजर आ रहा था। सड़क के पार दवाइयों की दुकान के भी अस्थि–पंथर नजर आ रहे थे। इस समय वह दुकान काली खोह–जैसी नजर आ रही थी। साइनबोर्ड का एक सिरा टूटकर नीचे की ओर लटक रहा था, अंदर टूटी–फूटी अलमारियाँ मलबे के ढ़ेर–जैसी लग रही थीं। बड़ा अटपटा लग रहा था। भला कोई दवाइयाँ भी लूटता है?

प्रोफेसर कन्हैयालाल भी लाइन में डोलची उठाए खड़ा था और सोच रहा था कि कैसे एक दिन में मुहल्ले का माहौल बदल गया है। यों, सन्नाटा तो सड़कों पर कल सुबह ही छा गया था, पर फिर भी, इक्का–दुक्का आदमी आ–जा रहे थे और कुछेक दुकानें भी खुली थीं। कन्हैयालाल स्वयं एक दूकान पर से सौदा–सूलफ लाया था। हवा में अनिश्चय डोल रहा था, और दुकान के कारिंदे ने भी कहा था– ''और कुछ भी लेना हो तो अभी ले जाइए, क्या मालूम दुकानें फिर कब खुलें।''

''क्यों, क्या बात है? क्या किसी बात का अंदेशा है?''

''क्या मालूम, कुछ भी हो सकता है।''

इसके कुछ ही देर बाद दुकाने बंद होने लगी थी। लगभग दस बजे सुनने में आया था कि पिछली बस्ती में आग लगी है। शायद इसकी भनक दुकानदारों को पहले से लग गई थी। तभी बची–खुची दुकानें भी सहसा बंद हो गई थी। प्रोफेसर कन्हैयालाल अपने घर की छत पर वह देखने के लिए चढ़ गया था कि आग सचमुच लगी है या झूठी अफवाह ही फैली है। पर उसने पाया कि आग एक जगह पर नहीं, अनेक स्थानों पर लगी थी। करोलबाग की ओर से तीन जगह से धुआँ उठ रहा था और भी बहुत–से लोग, अपनी–अपनी छतों पर, जगह–जगह से उठते धुएँ को देखते हुए कयास लगा रहे थे कि आग कहाँ लगी होगी। इधर पीछे मोतीनगर की ओर से भी, दो जगह से धुआँ उठ रहा था। एक जगह से तो बड़ा काले रंग का घुमड़ता–सा धुआँ था जो ऊपर उठ जाने पर भी छितर नहीं पा रहा था।

जगह–जगह पर से उठते धुएँ को देखकर कन्हैयालाल के दिल में धक्–सा हुआ था और फिर जैसे उसके मस्तिष्क में जड़ता–सी आ गई थी। इससे अधिक उसकी प्रतिक्रिया नहीं हुई। उसे भी लगा जैसे वह

यंत्रवत–सा उस दृश्य को देखे जा रहा है। प्रोफेसर कन्हैयालाल ने पहले भी अनेक बार आग के उठते शोले देखे थे, ऐसे शोले, जिनसे आधा आसमान लाल हो उठे। बाद में उन्हें याद करके वह आतंकित भी महसूस किया करता था। पर इस वक्त तो उसके जड़ मस्तिष्क में एक ही बात बार–बार उठ रही थी दिन को लगाई गई आग और रात को लगाई गई आग में बड़ा अंतर होता है। दिन को लगाई गई आग में दहशत नहीं होती, जबकि रात के वक्त लगाई गई आग बड़ी भयानक नजर आती है। रात की आग में धुआँ नजर नहीं आता, केवल धधकती आग की लौ नजर आती है। और साँपों की तरह ऊपर को उठते, आग के लपलपाते शोले नजर आते है, और आसमान लाल होने लगता है, जबकि दिन के वक्त धुआँ ज्यादा नजर आता है और आग के शोले धुएँ के बादलों में खोए–से रहते हैं। अनेक मकानों की छतों पर लोग खड़े थे, केवल सिख परिवारों के घरों की छतें खाली थी और छज्जे भी खाली थे। कन्हैयालाल की आँखों ने यह भी देखा। बात उसके मन में बैठ गई, पर उसकी कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई।

जब से यह घटनाचक्र शुरू हुआ था, लगभग तीन बरस पहले से, तभी से धीरे–धीरे उसके मस्तिष्क में जड़ता आने लगी थी। शुरू–शुरू में वह बड़ा उद्वेलित महसूस किया करता था। सही कौन है और गलत कौन, इसका अंदाज भी वह अपने बलबूते पर लगा लिया करता था। वह बहसें भी करता और उद्विग्न भी होता। पर धीरे–धीरे उसके मन में रिक्तता–सी आने लगी थी और उसे लगने लगा था जैसे कुछ है जो पकड़ में नहीं आ रहा है, जो हाथों में से छूटता–सा जा रहा है, कहीं कुछ फूट पड़ा है, जो काबू में नहीं आ रहा है। तभी वह चुपचाप और लोगों के तर्क सुनने लगा था, सभी पक्षों के, सभी मतों को सुनता रहता और केवल सिर हिलाता रहता। उसकी अवधारणा कहीं जमने भी लगती तो तर्क–कुतर्क के एक ही थपेड़े में वह बालू की भीत की तरह ढह जाती थी। बस, इतना ही रह गया था कि जब कोई रोमांचकारी घटना घटती तो वह सिर हिलाकर कहता— 'बहुत बुरा हुआ है। च–च–च, बहुत बुरा! ऐसा नहीं होना चाहिए था।'

इससे आगे उसका दिमाग काम नहीं कर पाता था। या फिर दिमागी उधेड़बुन शुरू हो जाती थी।

लगभग दो बजे लठैतों का एक गिरोह मुहल्ले में घुसा था। मोतीनगर की ओर से वे लोग आए थे। लाठियों और लोहे की लंबी–लंबी छड़े उठाए हुए। उस वक्त कन्हैयालाल मुहल्ले के कुछ लोगों के साथ बाहर चौक में खड़ा था। वे लोग चलते–चलते, सीधी सड़क छोड़कर बाएँ हाथ को घूम गए थे, और आँखों से ओझल हो गए थे। उनके ओझल हो जाने पर चौक में खड़े लोग कयास लगाने लगे थे कि वह किस दुकान पर वार करने गए होंगे।

वह हलवाई की दुकान थी। यही बहुत–से लोगों का कयास भी था। इस का पता धुएँ के उस बवंडर से लग गया था, जो उस ओर से शीघ्र ही उठने लगा था।

तरह–तरह की टिप्पणियाँ कन्हैयालाल के कानों में पड़ रही थीं —

''मैंने कल रात ही कहा था कि गड़बड़ होगी, मुहल्ले की एक कमेटी बना लो। जब कोई गुंडे आएँ तो उन्हें मुहल्ले के अंदर ही नहीं घुसने दो।''

यह मल्होत्रा था, चौथे ब्लॉकवाला।

इस पर कोई नहीं बोला।

''इन सरदारों को एक चपत तो पड़नी ही चाहिए,'' कोई दूसरा आदमी कह रहा था, ''इन्होंने 'अत्त' उठा रखी थी।''

इस पर भी कोई नहीं बोला।

कृष्णलाल की बूढ़ी माँ कहीं से चली आ रही थी। चौक के पास खड़ी मंडली के पास से गुजरते हुए बोली, ''वे जीणे जोगियो, इन्हाँ नूँ रोक देयो। इन्हाँ नूँ मना करा।''

पर किसी ने जवाब नहीं दिया। इस पर बुढ़िया खड़ी हो गई, ''मेरा दिल थर-थर काँपता है। मेरे तीनों बेटे अमृतसर में है। यहाँ तुम सिखों को बचाओगे तो कोई माई का लाल वहाँ मेरे बच्चों को भी बचाएगा।''

फिर भी किसी ने उत्तर नहीं दिया।

जमाना था जब कहीं पर भी झगड़ा हो जाने पर कन्हैयालाल उसमें कूद पड़ता था और लड़नेवालों को छुड़ा देता था, कहीं पर शोर सुन लेता तो उस ओर भाग खड़ा होता था पर आज उसके पाँव उठ नहीं रहे थे। आँखे फाड़े केवल देखे जा रहा था। आगे बढ़ने के लिए टांगे उठ ही नहीं रही थीं। केवल एक ही वाक्य मन में बार-बार उठ रहा था : 'बहुत बुरा हो रहा है। बहुत बुरी बात है। बहुत बुरा...'

तभी लठैतों का गिरोह फिर से सड़क पर आ गया था और मस्ती में झूमता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था। दवाइयों की दुकान के सामने लोग रुक गए। साँवले रंग का एक लंबा-सा लड़का, जिसके हाथ में लंबी-सी लोहे की छड़ थी, सबसे पहले दूकान की ओर बढ़ा और उसने सीधे साइनबोर्ड पर वार किया। एक ही वार में साइनबोर्ड का सिरा टूट गया और वह नीचे की ओर लटक गया। फिर बाकी लोग सक्रिय हो गए। दरवाजा टूटा तो वे बड़े आराम से दुकान के अंदर जाने लगे और जो हाथ लगा, उठा-उठाकर हँसते-चहकते बाहर निकलने लगे। कोई हड़बड़ी नहीं थी, कोई हुल्लड़ नहीं था, न दुकान तोड़ने में, न उसे लूटने में। दूर खड़े लोग इस तरह उसकी तमाशबीनी कर रहे थे, मानो मेला देखने आए हों। लूटनेवाले बड़े आराम से, एक-एक करके, मानो लाइन बनाकर लूट रहे थे। कन्हैयालाल की पड़ोसिन, भारी-भरकम श्यामा कहीं से टहलती हुई वहाँ जा पहुँची थी और पाउडर का एक बड़ा-सा डिब्बा उठाए, हँसती-मुस्कराती हुई बाहर निकल आई थी। रास्ते में उसे अपनी बेटी मिल गई, तो उसे डाँटते हुए बोली, ''मर जाणिए, जा भागकर जा, देर करेगी तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।?'' और बेटी भागती हुई गई थी और दुकान के अन्दर में किन्हीं गोलियों की बोतल उठा लाई थी। सड़क पर कोई तनाव नहीं था। केवल सरदार लोग घरों के बाहर नहीं निकले थे, सभी घरों के अंदर चले गए थे।

''चिन्ता की कोई बात नहीं। दुकान वाले को बीमा कंपनी मुआवजा दे देगी।''

चौराहे पर खड़ी दर्शक-मण्डली में से एक बोला था। इस पर दूसरे ने इसका खंडन करते हुए कहा था—

''नहीं, फिसाद में अगर लूट-पाट हो तो उसका मुआवजा कंपनी नहीं देती।''

''क्या मालूम उसने फिसाद का भी बीमा करा रखा हो!''

इस पर कुछ लोग हँस दिए।

तभी कुछ लोग दुकान के अंदर से एक अलमारी को घसीटकर सड़क के बीचोबीच ले आए और देखते–ही–देखते धू–धू करती आग के शोले उसमें में निकलने लगे। कुछ लोग घेरा बाँधे उसके इर्द–गिर्द खड़े हो गए थे, मानों लोहड़ी जलाई गई हो। साइनबोर्ड तोड़नेवाला अभी भी छड़ से अलमारी को पीट रहा था।

''दुकान सरदार की है मगर घर तो हिंदू का है, ''तमाशबीनों में से एक आदमी बोला, ''इसलिए अलमारी बाहर खींच लाए हैं।''

इस पर एक और आदमी ने टिप्पणी की; ''इधर पीछे ड्राइक्लीनर की दुकान को आग नही लगाई।''

''क्यों ?''

''क्योंकि उसमें एक हिंदू और एक सिख दोनों भाई वाले हैं ?''

''यह भी अच्छी रही!'' इस पर कुछ लोग हँस दिए।

''पीछे, मोतीनगर में ड्राईक्लीनर की एक दुकान किसी सिख–सरदार की है। उसे जलाने गए तो किसी ने पुकारकर कहा, 'ओ कमबख्तों, दुकान सिख की है, पर उसमें कपड़े तो ज्यादा हिन्दुओं के ही हैं! 'इस पर उसे भी छोड़ दिया।''

अब बगलवाली सड़क से कुछ मनचले एक कार धकेलकर ला रहे थे। दो लड़के उसकी छत पर बैठे सवारी कर रहे थे। साँवले रंग का लकड़ा यहाँ भी अपनी छड़ बराबर चला रहा था, जिसमें कभी मोटरकार का एक शीशा टूटता, तो कभी दूसरा, कभी उसकी छत पर गहरा गड्ढा पड़ जाता, कभी पुश्त पर। दूध के डिपो के निकट, चौराहे पर पहुँचकर, छत पर बैठे लकड़ों को नीचे उतारने के लिए उन्होने कार को एक बाजू उलट दिया। दोनों लड़के छलाँग लगाकर, हँसते हुए नीचे उतर आए। फिर छड़ का एक वार मोटर की टंकी पर हुआ, जिससे फौव्वारे की तरह पेट्रोल उसमें से फूट पड़ा। किसी ने माचिस से एक थिगली जलाई और उस पर फेंक दी। फिर लड़के कार के निकट से यों भागे जैसे दीवाली के समय, पटाखों की लड़ी को दियासलाई छूवाकर भागते है। धू–धू करके मोटरकार जलने लगी।

''लो, सेठी की कार तो गई!'' एक आदमी बोला।

इस पर एक आदमी ठहाका मारकर हँस दिया।

''क्यों, इसमें हँसने की क्या बात है ?''

''यह कार सेठी की नहीं थी। ये लोग सेठी के घर के सामने से धकेल लाए है। यह कार सेठी के दामाद की है जो हिंदू है। वह गाजियाबाद में रहता है। हा, हा ....।''

जलती कार में से गहरे काले रंग का धुआँ निकल रहा था। शीघ्र ही कार का रंग काला पड़ गया। अभी भी लगता नहीं था कि कोई कार जल रही है। धुआँ कम होने पर लौंडे–लपाड़े जलती मोटर पर एक और छड़

जमाते, हँसते–बतियाते आगे बढ़ गए। चौराहे के निकट खड़े लोग भी चुपचाप वहाँ से निकलने लगे। भीड़ तितर–बितर होने लगी। कन्हैयालाल भी 'च–च–च, बहुत बुरा हुआ है, बहुत बुरा', बुदबुदाता, अपने घर की ओर जाने लगा। हल्की–सी आत्म–प्रताड़ना की भावना उनके दिल को कचोटने लगी। पर उसने अपने को ढ़ाँढस बँधाते हुए मन ही मन कहा— 'इन बातों को देखकर कम से कम मेरी आँखो में पानी तो भर आया था! मेरी हिस तो नहीं मर गई है। और लोग तो मुँह बाए देखते रह गए थे, हँसी–ठठ्ठा कर रहे थे।'

रास्ते में वही बुढ़िया, जो सड़क पर मिली थी, श्याम को फटकार रही थी— ''किस बदनसीब का सामान उठा लाई है। बेटी को भी ऐसे पाप करना सिखा रही है। लाख ल़ानत है तुम पर! अभी जाओ, और जहाँ से यह सामान उठाया है, वहीं पर फेंककर आओ''।

और श्यामा, बुढ़िया की सीख को अनर्गल प्रलाप मानकर सुने जा रही थी और धीरे–धीरे मुस्कुराए जा रही थी।

घर पहुँचकर कन्हैयालाल को सभी घटनाएँ बड़ी बीहड़ और अटपटी लगी। यह कोई दंगा तो न हुआ। दंगे में तो लोग दुश्मन को पहचानते है, एक–दूसरे को ललकारते हैं, एक–दूसरे का पीछा करते हैं। पर यहाँ तो सड़क खाली थी और दुकान को जो चाहे तोड़ जाए, जो चाहे जला जाए। दंगे ऐसे तो नहीं होते। लुटेरों में एक भी चेहरा पहचाना नहीं था, एक भी आदमी अपने मुहल्ले का नहीं था। क्या हम इसे दंगा कह सकते हैं या नहीं?

और अब दूध की लम्बी लाइन में खड़ा वह तरह–तरह की चहम गोइयाँ, तरह–तरह के फिकरे, टिप्पणियाँ सुन रहा था। झुटपुटा पहले से कुछ साफ हुआ था। कैसी विडम्बना है, इन घटनाओं के बावजूद, एक उजला–सा दिन, आने से पहले वातावरण में अपनी चाँदी घोल रहा है। यहाँ भी बहुत–भी अटपटी बातें नजर आने लगी थी। सड़क खाली थी, दुकानें बंद थी, कोई आ–जा नहीं रहा था, फिर भी दूध लेनेवालों की लंबी लाइन लग गई थी। डोलची हाथ में पकड़े कन्हैयालाल, लाइन में खड़े और लोगों के चेहरे पहचानने की कोशिश कर रहा था।

उनके पीछे खड़े दो लड़के – जो शक्ल–सूरत से घरों के नौकर जान पड़ते थे–आपस में बतिया रहे थे। एक कह रहा था— ''मुँह पर लगानेवाली क्रीम होती है या नहीं? उसी की शीशियाँ मिली हैँ। और तू? तू क्या लाया?''

''वह ड्राइक्लीनर की दुकान थी यार, लोगों ने कुछ उठाने ही नहीं दिया। हम तो अंदर घुस गए थे, पर अंदर किसी आदमी ने हमें रोक दिया : 'दुकान तो सरदार की है पर कपड़े तो सभी लोगों के है। अपने ही कपड़े लूटोगे? चलो, यहाँ से।' हमारे हाथ तो कुछ नहीं लगा।''

तभी चौधरी वहाँ से गुजरा। चौधरी अपने को 'सेवादार' कहता है, 'पब्लिक का सेवादार'। वक्त–बेवक्त, जब भी कोई काम हो, उसके पास जाओ तो उसी वक्त हाथ जोड़कर उठ खड़ा होता है, और बात को ठीक तरह से सुने–समझे बिना साथ हो लेता है। ''हम तो पब्लिक के सेवादार है,'' वह कहता है, ''हमारा तो जिदंगी में कुछ बना–बनाया नहीं है। हमारा बाप, यह मकान हमारे नाम लिख गया है, इसी का किराया खाते

है और पब्लिक की सेवा करते हैं।''

आज चौधरी बड़ी भौड़ी-भी टोपी पहनकर आया है। लगता है उसकी पत्नी ने, पुराने मोजों के धागे उधेड़कर बुन दी है, क्योकि उसमें तीन-तीन रंगों की पट्टियाँ लगी है, और ऊपर फुदना लटक रहा है। चौधरी बिल्कुल जोकर लगता है।

''चौधरी, दूध की क्या पोजीशन है, आएगा या नही ?'' ऊँचे कद का एक मद्रासी लाइन में खड़े-खड़े पूछता है।

चौधरी खड़ा हो गया और हाथ जोड़ दिए— ''अभी-अभी सेंटर में टेलीफोन किया है। बाबू बोलता है, दूध तो बहुत है, आओ और आकर ले जाओ।''

''क्या मतलब ! क्या हम दूध लेने जाएंगे ? ऐसे भी कभी हुआ है। दूध है तो भेजता क्यों नहीं ?''

''बोलता है, दूध के तो ड्रम-के-ड्रम भरे है, पर भेंजे कैसे ?''

''क्यों ?''

''सभी ड्राइवर सरदार हैं। उन्हें नहीं भेजा जा सकता। खतरा है ना।''

'कहता हुआ चौधरी निकट आ गया, और मद्रासी के कान के पास अपना मुँह ले जाकर बोला, ''कोई हिन्दू यहाँ ट्रक चलाना जानता हो तो जाकर ले आए।''

''यहाँ से कौन जाएगा ? चलाना जानता भी होगा, तो भी नहीं जाएगा। रास्ते में कुछ भी हो सकता है।''

इस पर चौधरी, वहीं खड़े-खड़े ऊँची आवाज में बोला, ''इधर, दूध लेने के लिए सभी दौड़े आएंगे, पर वहाँ से लेने कोई नहीं जाएगा। पब्लिक की सेवा करने में हिदू की माँ मरती है।''

चौधरी फिर से अपना मुँह लंबे मद्रासी के कान के पास ले जाकर बोला, ''कल रात वकील का बेटा बहुत बोलता था—हम यह कर देंगे, हम वह कर देंगे। हमने कहा—भाइ, तू क्या कर देगा ? यह मुहल्ला तो पहले ही शरणार्थियों का मुहल्ला है। यहाँ पर तो लुटे-पिटे लोग आकर सिर छिपाने के लिए बैठ गए थे, जब पाकिस्तान बना था। अब उन्ही में से सिखों को चुन-चुनकर मारेगा !''

लम्बा मद्रासी उनकी बात सुन रहा था और आँखें बंद किए सिर हिलाए जा रहा था। मुहल्ले-भर में चौधरी की यह सिफ्त मशहूर थी कि जो बात कहने लायक नहीं होती थी उसे तो वह चिल्लाकर कहता था, पर जो बात बेमानी-सी होती थी, उसे पास आकर, कान में फुसफुसाकर कहता था।

''कल तू कहाँ था, चौधरी ? जब लूट-पाट मची थी ? लोग दुकानें जला रहे थे। तू कहीं नजर नहीं आया ?''

''क्या मुझे मरना था। वे गुंडे, जाने कहाँ से आ गए थे। उनके मुँह लगने के लिए क्या चौधरी ही बैठा है ?''

फिर आदत के मुताबिक, मद्रासी के कान के पास अपना मुँह ले जाकर बोला, ''मेरे घर में दरबार

साहिब रखा है ना! एक कमरे में हमने छोटा-सा गुरुद्वारा बनाया हुआ है ना, साई! अब किसी बदमाश को पता चल जाता तो मेरे घर को ही आग लगा देता। अब अपना ही कोई आदमी उन गुंडों को बता देता कि इधर दरबार साहिब रखा है, तो वे मेरे घर को ही आग लगा देते। हम हिंदू तो एक-दूसरे को ही काटते हैं ना!''

मद्रासी फिर आँखें बंद किए चौधरी का रहस्य सुनता और सिर हिलाता रहा। फिर आँखें खोलकर बोला, ''शहर की क्या पोजीशन है?''

''इधर पीछे, संतनगर के पास सात ट्रकों को जला दिया है। इधर भी तीन मोटरें जलाई हैं।''

''वह मोटर किसकी है? कहते है सेठी की है?''

''अरे सेठी की कहाँ है! मुझसे पूछो। वह तो सेठी के दामाद की है। गाजियाबाद में रहता है। वह हिंदू है। उसे पता चला कि शहर में खतरा है तो बेचारा गाड़ी लेकर मिलने आ गया। तो उसी की गाड़ी जला दी। सेठी की गाड़ी समझकर हिंदू की गाड़ी जला दी।''

मद्रासी की समझ में नहीं आ रहा था कि इस घटना पर हँस दे या अफसोस जाहिर करे।

''वेस्ट पटेलनगर के पीछे एक सरदार को भून डाला है।''

मद्रासी चौधरी के चेहरे की ओर देखने लगा। उसकी आँखे खुली-की खुली रह गई।

''कौन था वह?''

''कोई बढ़ई था। अपनी बेटी से मिलने आया था। उसे कुछ मालूम तो था नहीं, बलवाई आए तो बीच में कूद पड़ा। उन्हें रोकने लगा. अब वहाँ कौन सुननेवाला था? उसे वहीं...''

मद्रासी की आँखें खुली थीं और चेहरा पीला पड़ गया था, और वह चौधरी के चेहरे की ओर एकटक देखे जा रहा था।

चौधरी फिर अपने ढर्रे पर आ गया था।

''कल रात, वकील का बेटा कहने लगा, 'सभी सिख गुरुद्वारे में इकट्ठा हो रहे है। असला जमा कर रहे हैं। रात को दो बजे नंगी तलवारें लेकर बाहर निकल आएगे।' मैंने कहा, 'अरे साई, मेरे सामने तो एक भी सिख घर में से नहीं निकला। वे सब गुरुद्वारे में कैसे पहुँच गए? और इस वक्त असला कहाँ से लाएँगे? सभी सिख घरों के अंदर बैठे हैं।''

और चौधरी ने गर्दन पर हाथ फेरते हुए, अपनी रंग-बिरंगी टोपी को माथे पर धकेलते हुए कहा, ''अरे साई, इधर किसी को पता नहीं चल रहा कि क्या करे।'' फिर मद्रासी के कान के पास मुँह ले जाकर बोला, ''अभी नासमझ हैं ना, यही बात है। हिंदू-सिख में पहले कभी झगड़ा तो नहीं हुआ ना, यही बात है। अभी दोनों कच्चे खिलाड़ी हैं।'' फिर हँसकर कहने लगा, ''धीरे-धीरे सीख जाएँगे। हिंदू-मुसलमान का दंगा होता है या नहीं? उसे तो हम खूब पहचानते हैं। उसे अच्छी तरह से सीख लिया है। पीछे से किसी के कदमों की आहट भी आ जाए तो पहचान लेते है कि हिंदू आ रहा है या मुसलमान। क्यों साई? पर ये तो अभी इस काम में नए

हैं ना!''

फिर आवाज धीमी करके बोला, ''मेरे पड़ोस में वह सरदार रहता है कि नहीं ? वह लंबा-ऊँचा-सा। आज सुबह मैने दरवाजा खोला तो देखा, वह अपने घर के बाहर खड़ा था। मैने पूछा, 'सरदार जी, सुबह-सबेरे कहाँ जा रहे हो ?' तो बोला, 'थोड़ा घूमने जा रहा हूँ।' लो सुनो, शहर में क्या हो रहा है, और यह घूमने जा रहा है। मैंने कहा, 'सरदार जी, आज के दिन घूमने कौन जाता है ?' तो कहने लगा, 'घुमने की मुझे आदत है। घर पर बैठ नहीं सकता।' वह रोज सुबह पार्क में टहलने जाता है। बड़ी मुश्किल से उसे घर के अंदर भेजा।''

फिर चौधरी बड़े फलसफाना अंदाज में बोला—

''अभी शुरुआत है, साईं, अभी शुरुआत है। जब सीख जाएँगे तो ऐसी गलतियाँ नहीं करेंगे। हम लोग अभी नौसिखुआ है ना, इसलिए। जब सीख जाएँगे तब तुम देखना। दूर से ही एक-दूसरे को देखकर रोंगटे खड़े हो जाया करेंगे। अभी तो बच्चा पैरों के बल खड़ा होना सीख रहा है...।''

चौधरी फिर से गर्दन पर हाथ फेरते हुए कहने लगा, ''कल साई, जब दवाइयों वाले की दुकान जलाई गई, तो इसी सरदार के छोटे-छोटे बेटे, पीछे दरवाजे में से भागकर निकल गए, आग का तमाशा देखने। यह तो हाल हैं! पीछे-पीछे माँ भागती आई।'' फिर सहसा घड़ी की ओर देखकर बोला, ''अच्छा चलूँ, दूध का पता लगाऊँ।''

और यह मुढ़कर, तोंद खुजलाता, वहाँ से चला गया।

लाइन में खड़े कन्हैयालाल को लगा, जैसे हम सब किसी कगार पर खड़े है और एक झीनी, काँच की दीवार हमें गिरने से बचाए हुए है। यह काँच की दीवार चटक गई तो बचाव का कोई भी साधन नहीं रहेगा और हम सीधे किसी अथाह गर्त में जा गिरेंगे। और उसने फिर बुदबुदाकर कहा—

''बहुत बुरा हो रहा है, बहुत बुरा, च-च-च!''

और उसे भास हुआ कि प्रत्येक संकटपूर्ण घटना की सूचना मिलने पर, वह पिछले तीन साल से एक ही वाक्य दोहराता चला आ रहा है। जब आतंकवादियों द्वारा हत्याएँ हो रही थीं, तब भी वह यही कहता था, जब स्वर्ण मंदिर में फौजी कार्रवाई हुई तो भी उसने यही कहा, जब इंदिरा जी की नृशंस हत्या हुई तो भी वह यही कहता रहा, और अब जब उसे राष्ट्र, कगार पर खड़ा लग रहा है, तो भी उसके मुँह से यही शब्द निकल रहे हैं।

बढ़ई सिख के जिंदा जला दिए जाने की बात सुनकर उसकी टाँगे काँपने लगी थी। यो भी वह बड़ा खिन्न और उदास महसूस करने लगा था। खड़े-खड़े वह थक भी गया था, न जाने दूध आता भी है या नहीं। उसका मन हुआ कि वहाँ से निकल जाए। तभी उसकी नजर अपने निकट ही खड़ी, अपने मित्र सक्सेना की बेटी पर पड़ी जो हाथ में तीन डोलचियाँ उठाए खड़ी थी। कन्हैयालाल को बड़ा अजीब-सा लगा। यहाँ दूध का कोई ठिकाना नहीं, न मालूम आएगा भी या नहीं और इधर यह लड़की तीन डोलचियाँ उठाए खड़ी है।

''तुम तीन डोलचियाँ उठा लाई हो, बेटी! तुमने यह लाइन देखी है? अगर सभी लोग तीन-तीन डोलचियाँ दूध लेना चाहेंगे तो कितने लोगों को दूध मिलेगा?''

लड़की झेंप गई। फिर धीरे-से बोली, ''एक डोलची साथवालों की है, सरदार अंकल की, दूसरी ऊपरवालों की, एक हमारी।'' साथवाले? तभी कन्हैयालाल के मन में कौंध गया कि वहाँ दोनों घरों में सिख परिवार रहते हैं। लड़की उनके लिए भी दूध लेने आई है।

अब कन्हैयालाल की नजर लाइन में खड़े अनेक अन्य लोगों पर भी पड़ी, जो अपने हाथ में दो-दो या तीन-तीन डोलचियाँ भी उठाए खड़े थे।

देखकर उसका मन जाने कैसा हो आया। वह उद्वेलित-सा महसूस करने लगा।

थोड़ी दूरी पर गंजे सिर का एक आदमी, लाइन में खड़े किसी व्यक्ति से, किसी घर का अता-पता पूछ रहा था। कन्हैयालाल ने उसे पहचान लिया। बलराम था, उसकी जान-पहचान का था, राजेंद्रनगर में रहता है। पर यहाँ क्या करने आया है?

''बलराम!'' कन्हैयालाल ने आवाज लगाकर उसे बुलाया।

बलराम ने सिर ऊँचा किया, और लाइन में कुछ देर तक देखते रहने के बाद कन्हैया को पहचान लिया और आगे बढ़ गया।

''इधर सुबह-सुबह क्या करने आए हो? कहीं आग लगाने आए हो क्या!''

बलराम मुस्कराया, ''अब यही काम करना बाकी रह गया है, यही करने आया हूँ।'' फिर धीरे-से बोला, ''इधर किसी से मिलने आया हूँ।''

''कौन है वह?''

''एक बुजुर्ग सरदार जी है। पीछे पाकिस्तान से हैं, हमारे ही कस्बे के है। हमारे पिता जी के बड़े दोस्त थे। मैंने सोचा, उनकी खैर-खबर ले आऊँ। कल बड़ी गड़बड़ रही है ना!''

फिर आसपास के मकानों को नीचे-ऊपर देखकर बोला, ''यहीं कहीं रहते है। अब मैं मकान भूल गया हूँ। बहुत दिनों से मेल-मुलाकात नहीं हुई थी।'' फिर कन्हैयालाल की तरफ देखकर मुस्कराता हुआ घूम गया, ''शायद पिछली सड़क पर रहते है। सरदार केसर सिंह उनका नाम है, मोटर-पार्ट्स की दुकान करते है।'' और वह पिछली सड़क की ओर घूम गया।

उसे जाते देखकर कन्हैयालाल को लगा, जैसे हम लोग इतिहास के झुटपुटे में जी रहे हैं। आपसी रिश्तों के इतिहास का पन्ना पलटा जा रहा है, दूसरा खुल रहा है। इस अगले पन्ने पर जाने हमारे लिए क्या लिखा होगा।

तभी कहीं दूर से घरघराने की-सी आवाज सुनाई दी। लाइन में खड़े सभी लोगों के कान खड़े हो गए। किसी प्रकार की भी ऊँची आवाज से लोग चौंक चौंक जा रहे थे। फिर एक आदमी, जो किसी घर का नौकर जान पड़ता था, मोड़ काटकर भागता हुआ सामने आया : ''दूध आ गया! दूध की लारी आ गई!''

और लाइन में अपनी जगह पर आकर खड़ा हो गया। दूध कैसे पहुँच गया? सभी की आँखें सड़क के मोड़ की ओर लग गईं।

लारी ने मोड़ काटा और इठलाती हुई-सी डिपो की ओर आने लगी। हिचकोले खाती, जगह-जगह से घिसी-पिटी, पर लाइन में खड़े लोगों की नजर में सर्वांग सुंदरी लग रही थी। लाइन में हरकत आ गई। वह टूटने-टूटने को हुई, पर शीघ्र ही सँभल गई। लंबी लाइन एक बार टूट गई तो बावेला मच जाएगा।

ऐन डिपो के सामने बस आकर रुकी। ड्राइवर ने खिड़की में से सिर बाहर निकाला और पीछे खड़े क्लीनर को आवाज लगाई। फिर दरवाजा खोलकर पायदान पर खड़ा हो गया।

अरे, ड्राइवर तो सरदार है! यह यहाँ कैसे पहुँच गया! लंबी लाइन में खड़े सभी लोग सिख-ड्राइवर की ओर अचंभे से देखे जा रहे थे।

कन्हैयालाल से नहीं रहा गया। वह लाइन में से निकलकर लारी के पास जा पहुँचा।

''सरदार जी, आप कैसे... ?''

इस पर सिख-ड्राइवर मुस्कराया और बोला : ''बीबी, बच्चों ने दूध तो पीना है ना! मैंने कहा, चल मना, देखा जाएगा जो होगा। दूध तो पहुँचा आएँ।''

और फिर क्लीनर को दूध का पाइप लगाने की हिदायत करने लगा।

पहलवान की ढोलक

फणीश्वर नाथ रेणु

लेखक परिचय :

फणीश्वर नाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले में फारबिसगंज के पास औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद रेणु ने मैट्रिक नेपाल के विराटनगर के आदर्श विद्यालय से कोइराला परिवार में रहकर की। इनकी लेखन-शैली वर्णनात्मक थी जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया होता था। रेणु की कहानियों और उपन्यासों में उन्होंने आंचलिक जीवन के हर धुन, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सुर, हर सुंदरता और हर कुरुपता को शब्दों में बांधने की सफल कोशिश की है। रेणु के उपन्यास में मैला आंचल, परती परिकथा, जुलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे, पलटू बाबू रोड आदि है। रेणु के प्रसिद्ध कहानियाँ, मारे गये गुलफाम (तीसरी कसम), एक आदिम रात्रि की महक, लाल पान की बेगम, पंचलाइट, तबे एकला चलो रे, ठेस, संवदिया। संस्मरण-श्रुत-अश्रुत पूर्व, वनतुलसी की गंध, ऋणजल धनजल, रिपोर्ताज, नेपाली क्रांति कथा आदि है। सन् 1954 में लेखक का बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास मैला आँचल प्रकाशित हुआ जिसने हिन्दी कथा लेखन को एक नई दिशा दी। गाँव की सहज बोल चाल की भाषा लोक जीवन के केन्द्र में आ खड़ी हुई। वहाँ के लोकगीत, लोक कथाएँ, लोकोक्तियों आदि ने कथा साहित्य की साहित्यिक परम्परा को न सिर्फ छुआ बल्कि मिट्टी की गंध, धूल और मैल को भी प्रत्यक्ष कर दिया। 11 अप्रैल 1977 ई. को रेणु 'पैप्टिक अल्सर' की बीमारी के कारण चल बसे।

पहलवान की ढोलक

जाड़े का दिन। अमावस्या की रात—ठंडी और काली। मलेरिया और हैज़े से पीड़ित गाँव भयार्त्त शिशु की तरह थर-थर काँप रहा था। पुरानी और उजड़ी बाँस-फूस की झोंपड़ियों में अंधकार और सन्नाटे का सम्मिलित साम्राज्य! अँधेरा और निस्तब्धता!

अँधेरी रात चुपचाप आँसू बहा रही थी। निस्तब्धता करुण सिसकियों और आहों को बलपूर्वक अपने हृदय में ही दबाने की चेष्टा कर रही थी। आकाश में तारे चमक रहे थे। पृथ्वी पर कहीं प्रकाश का नाम नहीं। आकाश से टूटकर यदि कोई भावुक तारा पृथ्वी पर जाना भी चाहता तो उसकी ज्योति और शक्ति रास्ते में ही शेष हो जाती थी। अन्य तारे उसकी भावुकता अथवा असफलता पर खिलखिलाकर हँस पड़ते थे।

सियारों का क्रंदन और पेचक की डरावनी आवाज़ कभी-कभी निस्तब्धता को अवश्य भंग कर देती थी। गाँव की झोंपड़ियों से कराहने और कै करने की आवाज़, 'हरे राम! हे भगवान!' की टेर अवश्य सुनाई पड़ती थी। बच्चे भी कभी-कभी निर्बल कंठों से 'माँ-माँ' पुकारकर रो पड़ते थे। पर इससे रात्रि की निस्तब्धता में विशेष बाधा नहीं पड़ती थी।

कुत्तों में परिस्थिति को ताड़ने की एक विशेष बुद्धि होती है। वे दिन-भर राख के घूरों पर गठरी की तरह सिकुड़कर, मन मारकर पड़े रहते थे। संध्या या गंभीर रात्रि को सब मिलकर रोते थे।

रात्रि अपनी भीषणताओं के साथ चलती रहती और उसकी सारी भीषणता को, ताल ठोककर, ललकारती रहती थी— सिर्फ़ पहलवान की ढोलक! संध्या से लेकर प्रात:काल तक एक ही गति से बजती रहती—'चट्-धा, गिड़-धा....चट्-धा, गिड़-धा!' यानी 'आ जा भिड़ जा, आ जा, भिड़ जा!'... बीच-बीच में-'चटाक्-चट्-धा, चटाक्-चट्-धा!' यानी 'उठाकर पटक दे! उठाकर पटक दे!!'

यही आवाज़ मृत-गाँव में संजीवनी शक्ति भरती रहती थी।

लुट्टन सिंह पहलवान!

यों तो वह कहा करता था- 'लुट्टन सिंह पहलवान को होल इंडिया भर के लोग जानते है', किंतु इसके 'होल-इंडिया' की सीमा शायद एक ज़िले की सीमा के बराबर ही हो। ज़िले भर के लोग उसके नाम से अवश्य परिचित थे।

लुट्टन के माता-पिता उसे नौ वर्ष की उम्र में ही अनाथ बनाकर चल बसे थे। सौभाग्यवश शादी हो चुकी थी, वरना वह भी माँ-बाप का अनुसरण करता। विधवा सास ने पाल-पोस कर बड़ा किया। बचपन में वह गाय चराता, धारोष्ण दूध पीता और कसरत किया करता था। गाँव के लोग उसकी सास को तरह-तरह की तकलीफ़ दिया करते थे; लुट्टन के सिर पर कसरत की धुन लोगों से बदला लेने के लिए ही सवार हुई थी। नियमित कसरत ने किशोरावस्था में ही उसके सीने और बाँहों को सुडौल तथा मांसल बना दिया था। जवानी में कदम रखते ही वह गाँव में सबसे अच्छा पहलवान समझा जाने लगा। लोग उससे डरने लगे और वह दोनों हाथों को दोनों ओर 45 डिग्री की दूरी पर फैलाकर, पहलवानों की भाँति चलने लगा। वह कुश्ती भी लड़ता था।

एक बार वह 'दंगल' देखने श्यामनगर मेला गया। पहलवानों की कुश्ती और दाँव-पेंच देखकर उससे नहीं रहा गया। जवानी की मस्ती और ढोल की ललकारती हुई आवाज़ ने उसकी नसों में बिजली उत्पन्न कर दी। उसने बिना कुछ सोचे-समझे दंगल में 'शेर के बच्चे' को चुनौती दे दी।

'शेर के बच्चे' का असल नाम था चाँद सिंह। वह अपने गुरु पहलवान बादल सिंह के साथ, पंजाब से पहले-पहल श्यामनगर मेले में आया था। सुंदर जवान, अंग-प्रत्यंग से सुंदरता टपक पड़ती थी। तीन दिनों में ही पंजाबी और पठान पहलवानों के गिरोह के अपनी जोड़ी और उम्र के सभी पट्ठों को पछाड़कर उसने 'शेर के बच्चे' की टायटिल प्राप्त कर ली थी। इसलिए वह दंगल के मैदान में लँगोट लगाकर एक अजीब किलकारी भरकर छोटी दुलकी लगाया करता था। देशी नौजवान पहलवान, उससे लड़ने की कल्पना से भी घबराते थे। अपनी टायटिल को सत्य प्रमाणित करने के लिए ही चाँद सिंह बीच-बीच में दहाड़ता फिरता था।

श्यामनगर के दंगल और शिकार-प्रिय वृद्ध राजा साहब उसे दरबार में रखने की बातें कर ही रहे थे कि लुट्टन ने शेर के बच्चे को चुनौती दे दी। सम्मान-प्राप्त चाँद सिंह पहले तो किंचित, उसकी स्पर्धा पर मुसकुराया फिर बाज़ की तरह उस पर टूट पड़ा।

शांत दर्शकों की भीड़ में खलबली मच गई- 'पागल है पागल, मरा-ऐं! मरा-मरा!'... पर वाह रे बहादुर! लुट्टन बड़ी सफ़ाई से आक्रमण को सँभालकर निकलकर उठ खड़ा हुआ और पैंतरा दिखाने लगा। राजा साहब ने कुश्ती बंद करवाकर लुट्टन को अपने पास बुलवाया और समझाया। अंत में, उसकी हिम्मत की प्रशंसा करते हुए, दस रुपये का नोट देकर कहने लगे— ''जाओ, मेला देखकर घर जाओ!...''

''नहीं सरकार, लड़ेंगे... हुकुम हो सरकार... !''

''तुम पागल हो, ...जाओ!...''

मैनेजर साहब से लेकर सिपाहियों तक ने धमकाया- ''देह में गोश्त नहीं, लड़ने चला है शेर के बच्चे से! सरकार इतना समझा रहे हैं... !!''

''दुहाई सरकार, पत्थर पर माथा पटककर मर जाऊँगा... मिले हुकुम!'' वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता रहा था।

भीड़ अधीर हो रही थी। बाजे बंद हो गए थे। पंजाबी पहलवानों की जमायत क्रोध से पागल होकर लुट्टन पर गालियों की बौछार कर रही थी। दर्शकों की मंडली उत्तेजित हो रही थी। कोई-कोई लुट्टन के पक्ष से चिल्ला उठता था— ''उसे लड़ने दिया जाए!''

अकेला चाँद सिंह मैदान में खड़ा व्यर्थ मुसकुराने की चेष्टा कर रहा था। पहली पकड़ में ही अपने प्रतिद्वंद्वी की शक्ति का अंदाज़ा उसे मिल गया था।

विवश होकर राजा साहब ने आज्ञा दे दी- ''लड़ने दो!''

बाजे बजने लगे। दर्शकों में फिर उत्तेजना फैली। कोलाहल बढ़ गया। मेले के दुकानदार दुकान बंद करके दौड़े-''चाँद सिंह की जोड़ी-चाँद की कुश्ती हो रही है!!''

'चट्-धा, गिड़-धा, चट्-धा, गिड़-धा...'

भरी आवाज़ में एक ढोल-जो अब तक चुप था-बोलने लगा-

'ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना...'

(अर्थात्-वाह पट्ठे! वाह पट्ठे!!)

लुट्टन को चाँद ने कसकर दबा लिया था।

-"अरे गया-गया!!" दर्शकों ने तालियाँ बजाई-"हलुआ हो जाएगा, हलुआ. ! हँसी-खेल नहीं-शेर का बच्चा है...बच्चू!"

'चट्-गिड़-धा, चट्-गिड़-धा, चट्-गिड़-धा...'

(मत डरना, मत डरना, मत डरना...)

लुट्टन की गर्दन पर केहुनी डालकर चाँद 'चित्त' करने की कोशिश कर रहा था।

"वहीं दफ़ना दे, बहादुर!" बादल सिंह अपने शिष्य को उत्साहित कर रहा था।

लुट्टन की आँखे बाहर निकल रही थीं। उसकी छाती फटने-फटने को हो रही थी। राजमत, बहुमत चाँद के पक्ष में था। सभी चाँद को शाबाशी दे रहे थे। लुट्टन के पक्ष में सिर्फ़ ढोल की आवाज़ थी, जिसकी ताल पर वह अपनी शक्ति और दाँव-पेंच की परीक्षा ले रहा था-अपनी हिम्मत को बढ़ा रहा था। अचानक ढोल की एक पतली आवाज़ सुनाई पड़ी-

'धाक-धिना, तिरकट-तिना, धाक-धिना, तिरकट-तिना...!!'

लुट्टन को स्पष्ट सुनाई पड़ा, ढोल कह रहा था-"दाँव काटो, बाहर हो जा दाँव काटो, बाहर हो जा!!"

लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही, लुट्टन दाँव काटकर बाहर निकला और तुरंत लपककर उसने चाँद की गर्दन पकड़ ली।

"वाह रे मिट्टी के शेर!"

"अच्छा! बाहर निकल आया? इसीलिए तो....।" जनमत बदल रहा था।

मोटी और भौंड़ी आवाज़ वाला ढोल बज उठा-'चटाक्-चट्-धा, चटाक्-चट्-धा...' (उठा पटक दे! उठा पटक दे!!)

लुट्टन ने चालाकी से दाँव और ज़ोर लगाकर चाँद को ज़मीन पर दे मारा।

'धिना-धिना, धिक-धिना!' (अर्थात् चित करो, चित करो!!)

लुट्टन ने अंतिम ज़ोर लगाया-चाँद सिंह चारों खाने चित हो रहा।

'धा-गिड़-गिड़, धा-गिड़-गिड़, धा-गिड़-गिड़,'... (वाह बहादुर! वाह बहादुर!! वाह बहादुर!!) जनता यह स्थिर नहीं कर सकी कि किसकी जय-ध्वनि की जाए। फलतः अपनी-अपनी इच्छानुसार किसी ने 'माँ दुर्गा की', 'महावीर जी की', कुछ ने राजा श्यामानंद की जय-ध्वनि की। अंत में सम्मिलित 'जय!' से आकाश गूँज उठा।

विजयी लुट्टन कूदता-फाँदता, ताल-ठोंकता सबसे पहले बाजे वालों की ओर दौड़ा और ढोलों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। फिर दौड़कर उसने राजा साहब को गोद में उठा लिया। राजा साहब के कीमती

कपड़े मिट्टी में सन गए। मैनेजर साहब ने आपत्ति की–''हें–हें...अरे–रे!'' किंतु राजा साहब ने स्वयं उसे छाती से लगाकर गद्गद् होकर कहा–''जीते रहो, बहादुर! तुमने मिट्टी की लाज रख ली!''

पंजाबी पहलवानों की जमायत चाँद सिंह की आँखें पोंछ रही थी। लुट्टन को राजा साहब ने पुरस्कृत ही नहीं किया, अपने दरबार में सदा के लिए रख लिया। तब से लुटन राज–पहलवान हो गया और राजा साहब उसे लुट्टन सिंह कहकर पुकारने लगे। राज–पंडितों ने मुँह बिचकाया–''हुजूर! जाति का ... सिंह...!''

मैनेजर साहब क्षत्रिय थे। 'क्लीन–शेव्ड' चेहरे को संकुचित करते हुए, अपनी शक्ति लगाकर नाक के बाल उखाड़ रहे थे। चुटकी से अत्याचारी बाल को रगड़ते हुए बोले–''हाँ सरकार, यह अन्याय है!''

राजा साहब ने मुसकुराते हुए सिर्फ़ इतना ही कहा–''उसने क्षत्रिय का काम किया है।''

उसी दिन से लुट्टन सिंह पहलवान की कीर्ति दूर–दूर तक फैल गई। पौष्टिक भोजन और व्यायाम तथा राजा साहब की स्नेह–दृष्टि ने उसकी प्रसिद्धि में चार चाँद लगा दिए। कुछ वर्षों में ही उसने एक–एक कर सभी नामी पहलवानों को मिट्टी सुँघाकर आसमान दिखा दिया।

काला खाँ के संबंध में यह बात मशहूर थी कि वह ज्यों ही लँगोट लगाकर 'आ–ली' कहकर अपने प्रतिद्वंद्वी पर टूटता है, प्रतिद्वंद्वी पहलवान को लकवा मार जाता है लुट्टन ने उसको भी पटककर लोगों का भ्रम दूर कर दिया।

उसके बाद से वह राज–दरबार का दर्शनीय 'जीव' ही रहा। चिड़ियाखाने में, पिंजड़े और ज़ंजीरों को झकझोर कर बाघ दहाड़ता–'हाँ–ऊँ, हाँ–ऊँ!!' सुनने वाले कहते–'राजा का बाघ बोला।'

ठाकुरबाड़े के सामने पहलवान गरजता– 'महा–वीर!' लोग समझ लेते, पहलवान बोला।

मेलों में वह घुटने तक लंबा चोगा पहने, अस्त–व्यस्त पगड़ी बाँधकर मतवाले हाथी की तरह झूमता चलता। दुकानदारों को चुहल करने की सूझती। हलवाई अपनी दुकान पर बुलाता–''पहलवान काका! ताज़ा रसगुल्ला बना है, ज़रा नाश्ता कर लो!''

पहलवान बच्चों की–सी स्वाभाविक हँसी हँसकर कहता–''अरे तनी–मनी काहे! ले आव डेढ़ सेर!'' और बैठ जाता।

दो सेर रसगुल्ला को उदरस्थ करके, मुँह में आठ–दस पान की गिलोरियाँ ठूँस, ठुड्डी को पान के रस से लाल करते हुए अपनी चाल से मेले में घूमता। मेले से दरबार लौटने के समय उसकी अजीब हुलिया रहती–आँखों पर रंगीन अबरख का चश्मा, हाथ में खिलौने को नचाता और मुँह से पीतल की सीटी बजाता, हँसता हुआ वह वापस जाता। बल और शरीर की वृद्धि के साथ बुद्धि का परिणाम घटकर बच्चों की बुद्धि के बराबर ही रह गया था उसमें।

दंगल में ढोल की आवाज़ सुनते ही वह अपने भारी–भरकम शरीर का प्रदर्शन करना शुरु कर देता था। उसकी जोड़ी तो मिलती ही नहीं थी, यदि कोई उससे लड़ना भी चाहता तो राजा साहब लुट्टन को आज्ञा ही नहीं देते। इसलिए वह निराश होकर, लंगोट लगाकर देह में मिट्टी मल और उछालकर अपने को साँड़ या भैंसा साबित करता रहता था। बूढ़े राजा साहब देख–देखकर मुसकुराते रहते।

यों ही पंद्रह वर्ष बीत गए। पहलवान अजेय रहा। वह दंगल में अपने दोनों पुत्रों को लेकर उतरता था। पहलवान की सास पहले ही मर चुकी थी, पहलवान की स्त्री भी दो पहलवानों को पैदा करके स्वर्ग सिधार गई थी। दोनों लड़के पिता की तरह ही गठीले और तगड़े थे। दंगल में दोनों को देखकर लोगों के मुँह से अनायास ही निकल पड़ता–''वाह! बाप से भी बढ़कर निकलेंगे ऐ दोनों बेटे!''

दोनों ही लड़के राज–दरबार के भावी पहलवान घोषित हो चुके थे। अत: दोनों का भरण–पोषण दरबार से ही हो रहा था। प्रतिदिन प्रात:काल पहलवान स्वयं ढोलक बजा–बजाकर दोनों से कसरत करवाता। दोपहर में, लेटे–लेटे दोनों को सांसारिक ज्ञान की भी शिक्षा देता–''समझे! ढोलक की आवाज़ पर पूरा ध्यान देना। हाँ, मेरा गुरु कोई पहलवान नहीं, यही ढोल है, समझे! ढोल की आवाज़ के प्रताप से ही मैं पहलवान हुआ। दंगल में उतरकर सबसे पहले ढोलों को प्रणाम करना, समझे!''... ऐसी ही बहुत–सी बातें वह कहा करता। फिर मालिक को कैसे खुश रखा जाता है, कब कैसा व्यवहार करना चाहिए, आदि की शिक्षा वह नित्य दिया करता था।

किंतु उसकी शिक्षा–दीक्षा, सब किए–कराए पर एक दिन पानी फिर गया। वृद्ध राजा स्वर्ग सिधार गए। नए राजकुमार ने विलायत से आते ही राज्य को अपने हाथ में ले लिया। राजा साहब के समय शिथिलता आ गई थी, राजकुमार के आते ही दूर हो गई। बहुत से परिवर्तन हुए। उन्हीं परिवर्तनों की चपेटाघात में पड़ा पहलवान भी। दंगल का स्थान घोड़े की रेस ने लिया।

पहलवान तथा दोनों भावी पहलवानों का दैनिक भोजन–व्यय सुनते ही राजकुमार ने कहा–''टैरिबुल!''

नए मैनेजर साहब ने कहा–''हौरिबुल!''

पहलवान को साफ़ जबाब मिल गया, राज–दरबार में उसकी आवश्यकता नहीं। उसको गिड़गिड़ाने का भी मौका नहीं दिया गया।

उसी दिन वह ढोलक कंधे से लटकाकर, अपने दोनों पुत्रों के साथ अपने गाँव में लौट आया और वहीं रहने लगा। गाँव के एक छोर पर, गाँव वालों ने एक झोंपड़ी बाँध दी। वहीं रहकर वह गाँव के नौजवानों और चरवाहों को कुश्ती सिखाने लगा। खाने–पीने का खर्च गाँववालों की ओर से बँधा हुआ था। सुबह–शाम वह स्वयं ढोलक बजाकर अपने शिष्यों और पुत्रों को दाँव–पेंच वगैरा सिखाया करता था।

गाँव के किसान और खेतिहर–मज़दूर के बच्चे भला क्या खाकर कुश्ती सीखते! धीरे–धीरे पहलवान का स्कूल खाली पड़ने लगा। अंत में अपने दोनों पुत्रों को ही वह ढोलक बजा–बजाकर लड़ाता रहा–सिखाता रहा। दोनों लड़के दिन भर मज़दूरी करके जो कुछ भी लाते, उसी में गुज़र होती रही।

अकस्मात गाँव पर यह वज्रपात हुआ। पहले अनावृष्टि, फिर अन्न की कमी, तब मलेरिया और हैज़े ने मिलकर गाँव को भूनना शुरु कर दिया।

गाँव प्राय: सूना हो चला था। घर के घर खाली पड़ गए थे। रोज़ दो–तीन लाशें उठने लगीं। लोगों में खलबली मची हुई थी। दिन में तो–कलरव, हाहाकार तथा हृदय–विदारक रुदन के बावजूद भी लोगों के चेहरे पर कुछ प्रभा दृष्टिगोचर होती थी, शायद सूर्य के प्रकाश में सूर्योदय होते ही लोग काँखते–कूँखते–कराहते अपने–अपने घरों से बाहर निकलकर अपने पड़ोसियों और आत्मीयों को ढाढ़स देते थे–

''अरे क्या करोगी रोकर, दुलहिन! जो गया सो तो चला गया, वह तुम्हारा नहीं था; वह जो है उसको तो देखो।''

''भैया! घर में मुर्दा रखके कब तक रोओगे? कफ़न? कफ़न की क्या ज़रुरत है, दे आओ नदी में।'' इत्यादि।

किंतु, सूर्यास्त होते ही जब लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियों में घुस जाते तो चूँ भी नहीं करते। उनकी बोलने की शक्ति भी जाती रहती थी। पास में दम तोड़ते हुए पुत्र को अंतिम बार 'बेटा!' कहकर पुकारने की भी हिम्मत माताओं की नहीं होती थी।

रात्रि की विभीषिका को सिर्फ़ पहलवान की ढोलक ही ललकारकर चुनौती देती रहती थी। पहलवान संध्या से सुबह तक, चाहे जिस खयाल से ढोलक बजाता हो, किंतु गाँव के अर्द्धमृत, औषधि-उपचार-पथ्य-विहीन प्राणियों में वह संजीवनी शक्ति ही भरती थी। बूढ़े-बच्चे-जवानों की शक्तिहीन आँखों के आगे दंगल का दृश्य नाचने लगता था। स्पंदन-शक्ति-शून्य स्नायुओं में भी बिजली दौड़ जाती थी। अवश्य ही ढोलक की आवाज़ में न तो बुखार हटाने का कोई गुण था और न महामारी की सर्वनाश शक्ति को रोकने की शक्ति ही, पर इसमें संदेह नहीं कि मरते हुए प्राणियों को आँख मूँदते समय कोई तकलीफ़ नहीं होती थी, मृत्यु से वे डरते नहीं थे।

जिस दिन पहलवान के दोनों बेटे क्रूर काल की चपेटाघात में पड़े, असह्य वेदना से छटपटाते हुए दोनों ने कहा था-''बाबा! उठा पटक दो वाला ताल बजाओ!''

'चटाक्-चट-धा, चटाक्-चट-धा...' सारी रात ढोलक पीटता रहा पहलवान। बीच-बीच में पहलवानों की भाषा में उत्साहित भी करता था।-''मारो बहादुर!''

प्रात:काल उसने देखा-उसके दोनों बच्चे ज़मीन पर निस्पंद पड़े हैं। दोनों पेट के बल पड़े हुए थे। एक ने दाँत से थोड़ी मिट्टी खोद ली थी। एक लंबी साँस लेकर पहलवान ने मुसकुराने की चेष्टा की थी-''दोनों बहादुर गिर पड़े!''

उस दिन पहलवान ने राजा श्यामानंद की दी हुई रेशमी जाँघिया पहन ली। सारे शरीर में मिट्टी मलकर थोड़ी कसरत की, फिर दोनों पुत्रों को कंधों पर लादकर नदी में बहा आया। लोगों ने सुना तो दंग रह गए। कितनों की हिम्मत टूट गई।

किंतु, रात में फिर पहलवान की ढोलक की आवाज़, प्रतिदिन की भाँति सुनाई पड़ी। लोगों की हिम्मत दुगुनी बढ़ गई। संतप्त पिता-माताओं ने कहा-''दोनों पहलवान बेटे मर गए, पर पहलवान की हिम्मत तो देखो, डेढ़ हाथ का कलेजा है!''

चार-पाँच दिनों के बाद। एक रात को ढोलक की आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी। ढोलक नहीं बोली। पहलवान के कुछ दिलेर, किंतु रुग्ण शिष्यों ने प्रात:काल जाकर देखा-पहलवान की लाश 'चित' पड़ी है।

आँसू पोंछते हुए एक ने कहा- ''गुरु जी कहा करते थे कि जब मैं मर जाऊँ तो चिता पर मुझे चित नहीं, पेट के बल सुलाना। मैं जिदंगी में कभी 'चित' नहीं हुआ। और चिता सुलगाने के समय ढोलक बजा देना।'' वह आगे बोल नहीं सका।

हिन्दी साहित्य धारा

कक्षा - एकादश

नवीन पाठ्य-क्रम

हिन्दी 'ब' (द्वितीय भाषा)

With financial aid from the Government of West Bengal, this book is to be distributed to students of XI free of cost. This book is not for sale.

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्